राजकमल मनोविज्ञानमाला—२

हीन-भाव

(उसका विश्लेषण और उपचार)

लेखक

डब्ल्यू० जे० मैकब्राईड

अनुवादक

श्री जी० पी० सिंह

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई ।

प्रथम संस्करण, १९४८
द्वितीय आवृत्ति, १९५३
तृतीय आवृत्ति, १९५६

मुद्रक
श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस
दिल्ली ।

क्रम

प्रस्तावना

हीन-भाव (इनफ़ीरियारिटी कॉम्प्लेक्स) आजकल का एक प्रचलित शब्द बन गया है। अक्सर लोग ठीक-ठीक अर्थ समझे बग़ैर भी इस शब्द का प्रयोग करते रहते हैं। लेकिन आम तौर पर उनका मतलब एक ठोस प्रवृत्ति की जगह पर मनुष्य के उस निषेधात्मक दृष्टिकोण से होता है जो उसके जीवन की गति को धन-पक्ष के बजाय ऋण-पक्ष में मोड़ देता है। इस विचार से प्रचलित मनोविज्ञान का यह प्रयोग ठीक ही है, क्योंकि वस्तुतः हीन-भाव का अर्थ भी यही होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व के वे सभी लक्षण आ जाते हैं, जिन्हें देखने से पता चले कि व्यक्ति को अपने पर पूरा भरोसा नहीं है, या वह किसी अपूर्णता, असमर्थता या निरुत्साह की भावना से सन्तप्त है।

वियना के डॉक्टर फ़्रायड ने, जिन्होंने यह शब्द प्रचलित किया है, इसका प्रयोग उन निषेधात्मक भावों की व्याख्या करने में किया है जो मनुष्य को जननेन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले किसी दोष या कमज़ोरी के बोध से उत्पन्न होते हैं। फ़्रायड के अनुसार जीवन का आधार स्त्री-पुरुष की काम-वृत्ति (सैक्स) ही है और जब इस काम-प्रेरणा (लिबिडो) की पूर्ति के मार्ग में कोई बाधा पड़ जाती है तो व्यक्ति को एक प्रकार की अपूर्णता का अनुभव

होने लगता है। इस अनुभव से सम्बन्ध रखने वाली पीड़ित भावना दबकर अबोध चेतना (अनकाँशस माइण्ड) में समा जाती है। हीन-भाव या असफलता की भावना इसी का फल है।

परन्तु इसके विपरीत, डॉक्टर ऑडलर ने, जो कुछ समय तक फ़ायड के शिष्य थे, इस बात को सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के जन्म और पालन-पोषण की परिस्थितियों में भी हीन-भाव की ज़बरदस्त सम्भावना होती है, यानी इन भावों के उत्पन्न हो जाने के ऐसे अनेक तरीके हैं जिनका काम-वृत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक की आँखों में तिरछापन आ जाय और उसके स्कूल के साथी निर्दयतापूर्वक उसे इस पर चिढ़ाते रहें, तो इस अपमान से उत्पन्न हीन-भाव उसकी प्रौढ़ावस्था तक बना रह सकता है। सयाना होने पर इस बालक की प्रवृत्ति लोगों से दूर रहने की बन जायगी, क्योंकि उनसे उसे हमेशा आलोचना और निन्दा ही मिलती रही। एकान्तप्रिय वैरागी और वह व्यक्ति जो अपने साथियों से अलग रहता है—दोनों ही—किसी चोट पहुँचाने वाले अनुभव से उत्पन्न हीन-भाव के बोझ से दबे हुए हैं और यही कारण है कि वे दुनिया से उदासीन हैं। इस तरह हम देखते हैं कि व्यक्ति-मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक अनुभव, जो किसी व्यक्ति का आत्मसम्मान छीन लेता है, इस भाव के विकास का कारण है और मनुष्य को समाज का एक विकृत-मानस प्राणी बना देता है।

हीनता का मूल भय है। अतएव यदि व्यक्ति ने किसी दूषित

या दबाने वाले अनुभव के फलस्वरूप भय का दृष्टिकोण विकसित कर लिया है तो जीवन के प्रति उसकी सारी प्रवृत्ति ही निषेधात्मक बन जायगी। कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसा व्यक्ति बजाय इस बात के कि वह विश्वास के साथ पूर्ण आत्मनिर्भरता और परिपक्वता की तरफ आगे बढ़े, बचपन की सुरक्षा और आराम की तरफ लौटना आरम्भ कर देगा। बचपन के दिनों में न तो उसे कोई निर्णय करना था और न कोई ज़िम्मेदारी उठानी थी और अब चूँकि उसका मन भयभीत है, वह पुनः उसी बचपन की अवस्था में लौटकर आ जाना चाहता है। अनेक लोगों में सयाना हो जाने पर भी जो हम बच्चों की-सी आदतें देखते हैं या आज के दृष्टिकोण में जो हम सामान्य अपरिपक्वता देखते हैं उसकी व्याख्या यही है।

इस प्रकार के भय से पीड़ित व्यक्ति बचपन के शान्तिमय जीवन में ही न लौट जाना चाहेगा, वरन् किसी प्रकार की भी कठोर परिस्थिति का सामना करने में हिचकता रहेगा। उसके जीवन का कोई स्थिर या निश्चित उद्देश्य न होगा; उसे अपनी शक्तियों पर से विश्वास हट जायगा, जीवन से एकदम निराश होकर वह शराबखोरी, पराश्रय और जुए का आश्रय लेता हुआ दिखाई पड़ेगा।

दूसरी तरफ़, यदि वह व्यक्ति हठ-प्रवेशक या ज़बरदस्ती करने वाला (अग्रेसिव) हुआ तो झूठी डींग मारना, हर बात पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देना, अत्युक्ति करना तथा 'शेख़ीबाज़'

के जितने भी इस तरह के लक्षण होते हैं, उन सबका सहारा लेकर अपने हीन-भाव को छिपाने का प्रयत्न करेगा। यह सभी आचरण अपूर्णता की किसी गहरी भावना के ऊपरी लक्षण हैं।

आगे आने वाले परिच्छेदों में हमने हीन-भाव (इनफ़ीरियारिटी कॉम्प्लेक्स) और हीनता की भावना (इनफ़ीरियारिटी फीलिंग) में स्पष्टता के ख़याल से थोड़ा अन्तर करने का प्रयत्न किया है। ऐसा करना बहुत उचित नहीं, फिर भी विषय को जहाँ तक हो सके आसान बनाने के विचार से ही हमने यह प्रयत्न किया है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि कुछ लोगों पर इस निषेधात्मक प्रवृत्ति का असर बहुत मामूली होता है, जबकि अनुभव की तीव्रता और स्थायित्व के कारण औरों के विचारों तथा कार्यों पर भी इसका प्रभुत्व दिखाई पड़ता है।

इस बात को हमें मान लेना पड़ेगा कि अपूर्णता और हीनता की भावना कुछ-न-कुछ अंश में सर्वव्यापी है। कोई इससे बचा नहीं है। हर आदमी किसी-न-किसी समय इसका अनुभव करता है। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि अपूर्णता और हीनता के इन भावों से उन्नति करने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है और यह जीवन के प्रत्येक विभाग के लिए सही है। अगर हम किसी-न-किसी के मुकाबले अपने को हीन न महसूस करें तो शायद हमारा विकास ही रुक जाय और उन्नति करके और आगे बढ़ने की प्रेरणा ही समाप्त हो जाय।

असली दिक्कत तब पैदा होती है जब हम इन भावों को अपने ऊपर इतना हावी हो जाने देते हैं कि साहस और महत्त्वाकांक्षा की भावनाएँ उनके नीचे दब जाती हैं और जैसा कि हम जानते हैं ऐसे लोगों की संख्या काफी बड़ी है जो किसी दूषित अनुभव या ग़लत शिक्षा के कारण इन विकृत भावों के शिकार हो जाते हैं और अनेक प्रयत्न करके भी इनसे निकल नहीं पाते। ऐसे लोगों की संख्या हमारे अनुमान से कहीं बहुत अधिक है। और यही कारण है कि वह दिन बहुत दूर नहीं, जब एक ऐसे पेशे के लोग निकलेंगे, जिन्हें मस्तिष्क के विकारों और बीमारियों को समझने में उतना ही कौशल प्राप्त होगा जितना कि वर्त्तमान डॉक्टरी पेशे वालों को शरीर और उसके विकारों का है। इस प्रकार की कुशल सहायता की सख्त ज़रूरत है, इसे हम यह देखकर समझ सकते हैं कि आज हमारे चारों तरफ ऐसे लोगों की भीड़ लगी रहती है जो मस्तिष्क से लँगड़े और जीवन से बेतरह निराश होते हैं।

• १ •

हीन-भाव का आधार

लोग अधिकाधिक इस बात को मानने लगे हैं कि व्यक्ति के भावी जीवन और चरित्र को निर्धारित करने में उसके बचपन के मानसिक अनुभवों का काफ़ी हाथ होता है। यह कहना असत्य न होगा कि बाद के जीवन में उसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य अथवा अस्वास्थ्य बहुत-कुछ इन्हीं अनुभवों पर निर्भर रहता है।

बचपन के प्रथम वर्षों में ही बालक के जीवन की रूपरेखा तैयार हो जाती है। पालना छोड़ने के पहले ही वह बन या बिगड़ चुका होता है। इस निर्विवाद सत्य के पीछे प्रकृति का वह नियम है जिसके अनुसार वृक्ष का कोमल पौधा जिधर को मोड़ दिया जाय, उसी दिशा में बढ़ने लगता है। विकास का यह नियम मानव-मस्तिष्क पर भी इतना ही लागू होता है। बचपन के आरम्भिक दिनों में ही बालक के भावात्मक (इमोशनल) जीवन की रचना हो चुकती है। उसे दो प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने की सम्भावना रहती है। यदि समझदार माता-पिता के हाथों उसे उचित मात्रा में स्नेह मिल सका तो वह अपने को सुरक्षित अनुभव करेगा, परन्तु यदि आवश्यकता से अधिक

लाड़-प्यार करके बालक की सामान्य अवस्था भंग कर दी गई तो वह अपने को अरक्षित समझने लगेगा। परिस्थितियों की इस अनुकूलता या प्रतिकूलता के अनुसार ही वह सीखता है कि उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रोने की ज़रूरत है या उसके आसपास कोई ऐसा व्यक्ति मौजूद रहता है जो बिना रोये भी उसकी आवश्यकता को समझ लेता है। बचपन की इन तथा ऐसी ही अन्य अनेक बातों का बालक के कोमल मस्तिष्क पर ऐसा अमिट निशान बन जाता है, जो उसकी किशोर तथा प्रौढ़ावस्था तक बना रहता है।

बालक का बचपन किस परिस्थिति-विशेष में व्यतीत होता है, उसे किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, या उसकी शिक्षा में क्या विशेषता होती है, इन्हीं बातों पर प्रौढ़ावस्था में प्रकट होने वाली हीन-भावना का स्वरूप निर्भर रहता है। आइए, अलग-अलग इनका विश्लेषण करें।

बचपन में बालक नितान्त असहाय होता है। जन्मजात असमर्थता के कारण भोजन, आश्रय, रक्षा तथा साथ के लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस पराधीन स्थिति में उसे अपनी असहायावस्था का बोध होने लगना स्वाभाविक है। वह स्वयं अपने लिए कुछ नहीं कर सकता, उसे अपनी प्रत्येक आवश्यकता के लिए दूसरों का आसरा देखना पड़ता है, बार-बार ये भाव उसके मन में आते हैं। इस प्रकार उसके कोमल मस्तिष्क में अपनी अपूर्णता तथा दूसरों पर निर्भरता के भाव

बच्चे के बढ़ने में काफी समय लग जाता है और इससे उसकी बेबसी की भावना और भी तीव्र हो जाती है। मनुष्य के बच्चे को बढ़कर स्वतन्त्र बनने में अन्य जीवों के बच्चों की अपेक्षा अधिक समय लगता है। उदाहरण के लिए कुत्ते या बिल्ली के बच्चों को ही ले लीजिए। कुछ ही महीनों में सयाने होकर वे आत्म-निर्भर बन जाते हैं तथा अपने भोजन और रक्षा का प्रबन्ध स्वयं करने लगते हैं। परन्तु मनुष्य के बच्चे को स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर बनने में कई वर्ष लग जाते हैं तथा सामान्य प्रवृत्ति इन वर्षों को बढ़ाते जाने की ही तरफ होती है, अर्थात् कितने ही व्यक्ति जब तक पूर्ण पुरुषत्व या स्त्रीत्व नहीं प्राप्त कर लेते, स्वतन्त्र नहीं बन पाते। दूसरे शब्दों में पराश्रय की भावना, जो वास्तव में आर्थिक और सामाजिक हीनता की भावना है, उनकी स्वतन्त्र विचार-शक्ति और जीवन की भावात्मक पृष्ठभूमि को धुँधली बनाये रहती है।

अनेक प्रगतिशील लेखकों के मतानुसार आधुनिक संसार की आधी बुराइयों का कारण यह है कि आज के स्त्री-पुरुष सच्चे अर्थों में सयाने नहीं बन पाते, स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उनमें नहीं होती तथा बिना किसी के नेतृत्व के वे आगे नहीं बढ़ सकते। और यही कारण है कि दुनिया में डिक्टेटर पैदा हो जाया करते हैं। अर्ध-विकसित और उत्साहहीन प्रौढ़ता का अर्थ होता है जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति बच्चों

जैसा दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का अभाव। आए-दिन होने वाले तलाक, सिनेमा और थियेटर के अभिनेताओं तथा खिलाड़ियों से सम्बन्ध रखने वाली सनसनीख़ेज़ खबरें, जिन्हें हम दैनिक अखबारों में पढ़ा करते हैं, जीवन के प्रति इसी अपरिपक्व दृष्टिकोण का परिणाम होती हैं। इनसे मनुष्य की नैतिक तथा भावना-सम्बन्धी अस्थिरता का पता लगता है। रोज़-रोज़ बढ़ती हुई डिक्टेटरों की संख्या इस बात का सबूत है कि सामाजिक उत्तरदायित्व का भार उठा सकने में हम असमर्थ हैं तथा प्रजातन्त्रीय शासन से काम लेने की योग्यता हममें नहीं है।

आज हमारे युवकों का शौक युद्ध तथा उसके शस्त्रास्त्रों की तरफ़ बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय दृष्टि से यह उनकी बच्चों जैसी अपरिपक्वता का चिह्न है। जिस प्रकार खेलने की बन्दूक को हाथ में लेकर बच्चा तरह-तरह की बातें सोचने लगता है, ठीक उसी प्रकार आज का मनुष्य तोपों के आकार-प्रकार, उनकी अद्भुत शक्ति तथा एक निशाने में वे कितने आदमियों को उड़ा सकती हैं आदि स्वप्निल भावनाओं में एक काल्पनिक सन्तोष तथा अभिमान का अनुभव करता है। इन ध्वंसकारी खिलौनों द्वारा प्राप्त शक्ति के अहंकार में इनसे चूर-चूर हो जाने वाले शरीरों के पीछे छिपी हुई मानवीय दुःख-गाथा उसे एकदम भूल जाती है। लेकिन जिस दिन दुनिया सच्चे अर्थों में सयानी हो जायगी तब उसका ध्यान मानव की इस करुण कहानी की तरफ़ अधिक जायगा, बनिस्बत उस अद्भुत मशीन के।

बाल्य-काल का लम्बा होना हीन-भाव—यानी दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति—का कारण है ही; बालक को किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, इसका भी काफी प्रभाव पड़ता है। ऐसे बच्चे, जिनमें सयाने होने पर हीनता का भाव आ जाने की स्पष्ट सम्भावना होती है, तीन प्रकार के होते हैं। पहली श्रेणी उन बालकों की है जिनमें कोई शारीरिक कमी हो। शारीरिक कमी का मतलब है शरीर में किसी ऐसी अवस्था का दिखाई पड़ना जो सामान्य से भिन्न हो। इसके अनेक रूप हो सकते हैं। किसी सुन्दर कुमारी के चेहरे का तिल (जिससे उत्पन्न बेचैनी से पागलपन तक की नौबत आ जाने की बात मशहूर है) से लेकर टेढ़े या भद्दे अङ्ग तक को शारीरिक कमी समझा जायगा। इन दोनों के बीच का कोई भी ऐब या टेढ़ापन हीन-भाव की उत्पत्ति का कारण बन सकता है।

डॉक्टर बैरन वुल्फ़ ने ऐसे सम्भावित कारणों की निम्नलिखित सूची दी है—बहुत मोटा या पतला होना; पैदायशी निशान; भूरे बाल; शरीर का पीलापन; अधिक रोयें का होना; बेढंगी नाक; आँखों के रंग में अन्तर; बाहर निकले हुए दाँत; चिरी हुई या बैठी हुई ठोड़ी; पतली या मोटी गरदन; गिरे हुए कन्धे; बहुत बड़े या एक-दूसरे से छोटे-बड़े स्तन; मोटी कमर; बहुत चौड़े या पतले नितम्ब; लम्बी, टेढ़ी या छोटी टाँगें; टकराते हुए घुटने; बड़े या बहुत छोटे पैर; सिर का गंजा होना; चेहरे पर बहुत बाल या मुँहासे; शरीर पर पीली चित्तियाँ; स्वभाव-सम्बन्धी अस्थिरता

(जैसे बहुत जल्दी चेहरे पर लज्जा की अरुणाई या पसीना आ जाना); तथा पुरुषों के ज़नाने या स्त्रियों के मर्दाने शरीर आदि। सामान्य शरीर से भिन्न ये तथा इसी प्रकार की अन्य विषमताएँ हीन-भाव का आधार बन सकती हैं, क्योंकि रोग की दृष्टि से तो नहीं परन्तु सामाजिक दृष्टि से इनका काफ़ी महत्त्व है।

अक्सर शरीर से कमज़ोर लड़कों को अपने से मज़बूत साथियों के हाथों काफी छेड़-छाड़ का शिकार बनना पड़ता है; और इसका कारण केवल इतना होता है कि स्वयं अपनी रक्षा कर सकने में वे असमर्थ होते हैं। चोट खाई हुई भावनाओं को चुप-चाप दबाकर आत्म-गौरव को किनारे रख देने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं होता। परन्तु गहरे अपमान की भावना के इस निरोध (रिप्रेशन) से ही उनकी भावी मानसिक तकलीफों का आरम्भ हो सकता है। चोट खाई हुई भावना को बाहर निकालना बहुत ज़रूरी है। यदि उसे बाहर न निकाला गया तो वह मनुष्य की अबोध चेतना का अंग बनकर उसकी शक्ति को दबा देती है तथा मस्तिष्क को दूषित बना डालती है।

भावना को बाहर निकाल देने का हमारा अभिप्राय यह है कि ऐसे बालक से किसी चतुर व्यक्ति को—चाहे वह उसका शिक्षक हो, माता-पिता हों, या कोई मित्र हो—ऐसी सुन्दर तथा सन्तोष देने वाली बातें करनी चाहिए कि बालक अपने अपमान की बात भूल जाय। यही उसका मनोवैज्ञानिक इलाज है। जहाँ तक मज़बूत लड़के का सम्बन्ध है, उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं

पड़ती। वह या तो मौक़े पर ही लड़कर अपना क्रोध निकाल लेता है या इतना बढ़िया खेल खेल लेता है कि उसी की ख़ुशी में अपमान को एकदम भूल जाता है।

एक कॉलेज-प्रोफ़ेसर के सम्बन्ध में अन्वेषण करने से ज्ञात हुआ कि उसके हीन-भाव का प्रारम्भ बचपन के इस अनुभव के साथ हुआ कि अन्य लड़कों की अपेक्षा वह बहुत लम्बा है। बड़ी भीड़ में भी अन्य लोगों की अपेक्षा उसे देख लेना आसान था तथा जब कभी स्कूल के कमरे में कोई गड़बड़ होती थी, उसे अनुशासन के लिए फटकार मिलती थी। कभी-कभी तो यह ताड़ना ठीक होती थी, परन्तु अक्सर उसके साथ अनायास ही सख़्ती हो जाती थी। इसी तरह केवल इसलिए कि वह सबसे लम्बा था, इसमें निराला और असहाय बनकर उसे अपमानित होना पड़ता था। एक और विश्लेषण में कॉलेज के एक छात्र ने अपने हीन-भाव का उद्गम उस घटना से ढूँढ़ निकाला जब पहले-पहल उसे अपने अत्यन्त छोटे होने का बोध हुआ था। खेल-कूद तथा अपने साथियों के प्रति उसके दृष्टिकोण में इससे काफ़ी अन्तर आ गया तथा पेशे के चुनाव पर भी इसका बहुत असर पड़ा।

अतिशय लाड-प्यार के कारण बिगड़े हुए बालक की जो अवस्था हो जाती है, वह हीन-भाव का दूसरा कारण है। सम्भव है यह कथन कुछ अजीब-सा प्रतीत हो, परन्तु है यह आधुनिक समाज का एक दुःखद सत्य। बीसवीं सदी की माँग है साहस और आत्म-निर्भरता। बिना इन गुणों के नई दुनिया की चुनौती

का सामना नहीं किया जा सकता। लेकिन साहस और आत्म-निर्भरता ही वे गुण हैं जिनकी बिगड़े हुए बालक को कभी शिक्षा दी ही नहीं जाती। बचपन से ही उसे मनमानी करने की आदत होती है। जब तक उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति होती रही है, अपने घर में वह बादशाह की तरह रहता आया है तथा कभी किसी प्रकार की बाधा, विरोध, कठिनाई या अकेलेपन का अनुभव नहीं किया है। नतीजा यह होता है कि जब ये कठिनाइयाँ और चुनौतियाँ उसके सामने आती हैं, तो इनका सामना करने की भावना का उसमें सर्वथा अभाव होता है।

दो उदाहरण इस सत्य की व्याख्या के लिए काफ़ी होंगे। पहला है परिवार में दूसरे बच्चे का पैदा होना। एक ऐसे घर में, जहाँ अब तक पहले बच्चे का ही लाड-प्यार होता रहा है, दूसरे बच्चे का आगमन मनोवैज्ञानिक ख़तरों से भरा होता है। यदि पहले बच्चे को नवागन्तुक शिशु के स्वागत के लिए सतर्कता से तैयार न किया जाय तो इस नई घटना से उसके दिमाग़ पर धक्का लगता है। उसको अब तक विश्वास करना सिखाया गया था कि उस घर का सर्वस्व वही है, परन्तु एकाएक उसका एक ऐसे नये प्रतिद्वन्द्वी से सामना होता है, जो उसकी गद्दी छीन लेने का दावा ही नहीं करता, वरन् उस पर बैठ भी जाता है। धीरे-धीरे उसे अनुभव होने लगता है कि अब उसकी स्थिति अधीनता की है, वह अपनी गद्दी पर से उतार दिया गया है।

पहले बच्चे को पता नहीं कि इस नई परिस्थिति में वह क्या

करे। निराशा की यह भावना धीरे-धीरे उसके हृदय में घर कर जाती है। कभी-कभी लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ऐसा बच्चा सोते में बिस्तर पर पेशाब कर देता है, भयभीत होकर चिल्ला उठता है या हकलाने लगता है। परन्तु ये बातें थोड़े दिनों तक रहती हैं, इनसे उसका काम नहीं चल पाता। अन्त में बचपन की उपेक्षा और अपमान से उत्पन्न यही दबी हुई भावना प्रौढ़ावस्था में मासिनक विकारों का कारण बनती है।

दूसरा उदाहरण उस अवस्था का है जब बिगड़ा हुआ बालक सयाना होकर दुनिया का सामना करने निकलता है। यदि बड़ा हो जाने पर भी वह सौभाग्यशाली बना रहा तो सम्भवतः उसे दैनिक जीविका-उपार्जन करने की चुनौती का सामना कभी न करना पड़े और ऐसी अवस्था में उसे कोई मनोवैज्ञानिक कठिनाई न होगी। परन्तु यदि वह किसी सुरक्षित पेशे या व्यापार में जाता है तो वहाँ अपनी आदत के अनुसार ऐसी रियायतों और दूसरों के मुक़ाबले विशेषता की माँग करना आरम्भ कर देगा कि लोगों को फौरन उसके बिगड़े हुए होने का पत चल जायगा। ऐसा व्यक्ति आशा करता है कि प्रौढ़ावस्था में भी उसे वैसी ही परिस्थितियाँ मिलें, जिनमें वह बचपन की ही भाँति मनमानी कर सके। परन्तु जब ऐसा नहीं हो पाता तो स्वभावतः वह कहना आरम्भ करता है कि हर एक उसे नीचा दिखाना चाहता है।

इसके विपरीत, यदि कहीं दुर्भाग्यवश किसी बिगड़े हुए लड़के को स्वयं अपना रास्ता बनाना पड़ा, जहाँ उसके अपने साहस और

परिश्रम के अतिरिक्त अन्य किसी सहारे या सुरक्षा की सम्भावना न हुई तो सम्भवतः उसे निराशा और निरुत्साह के थपेड़ों से परास्त हो जाना पड़ेगा। उसे अनुभव होगा कि वह एक ऐसी दुनिया के लिए तैयार ही नहीं किया गया जिसमें पग-पग पर प्रतियोगिता और उपेक्षा मिलती है और चूँकि अकेला खड़ा होकर वह अपना रास्ता नहीं बना सकता, अतः निराश होकर बैठ जाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि अपनी स्वतन्त्रता के खिलाफ़ इस चुनौती का किस प्रकार मुकाबिला करे। कई बार वह फिर उठता है और अपनी शक्ति की आज़माइश करता है, परन्तु जब सारे ही प्रयत्न असफल हो जाते हैं तो अन्त में वह उस दुखी और जीवन से निराश वर्ग की शरण लेता है, जो आज के शहरी जीवन का एक सामाजिक अभिशाप बन गया है—समाज के आश्रितों, धोखेबाजों, लुटेरों, वेश्यागामियों, जुआरियों और शराबियों का वर्ग। पतन की ओर ले जाने वाली इन प्रवृत्तियों का उदय बड़ी आसानी से होता है और इन्हीं प्रवृत्तियों में वे अभागे और पराजित लोग शरण लिया करते हैं, जो अपने पुरुषत्व या नारीत्व की अविकसित नैतिक शक्ति के कारण कठिन और परिश्रम-साध्य कर्तव्यों से भागे हुए होते हैं। इस प्रकार आज के नागरिक जीवन की गन्दगी उन अभागे परन्तु अच्छे स्त्री-पुरुषों से बनी होती है, जो किसी ग़लत या दूषित शिक्षा के कारण जीवन के मोर्चे से हटकर लौटे हुए होते हैं।

अभी हाल में ही लेखक ने जोशीले वक्ता को, जो देखने

में एकदम स्वस्थ प्रतीत होता था, लन्दन की एक भीड़ में कहते सुना कि 'जब वह बालक था तो सभी उसे पसन्द करते थे परन्तु अब जब वह बड़ा हो गया तो कोई भी उसे नहीं चाहता।' यह व्यक्ति अपनी जीविका भी इन्हीं भ्रष्ट तरीकों से उपार्जन करता था। यदि उसने इतना ही परिश्रम और साहस कोई रचनात्मक कार्य करने में किया होता तो उसे जीविका और अच्छे मित्र दोनों ही मिले होते। परन्तु वह निरुत्साहित हो गया था और जैसा कि उसकी शिकायत से पता चलता है कि वह प्रौढ़ावस्था के अध्यवसाय द्वारा आत्म-निर्भर बनने की अपेक्षा बचपन की उस अवस्था में लौट जाने के लिए लालायित है, जहाँ दूसरे के सहारे उसकी इच्छाओं की पूर्ति हो सके। जिस प्रकार शीशे के ग्रीष्म-भवन में रखा हुआ कोमल पौधा उत्तरी प्रदेशों की ठण्डी हवा नहीं सहन कर सकता, उसी प्रकार बचपन का बिगड़ा हुआ व्यक्ति घोर स्वार्थ और प्रतियोगिता से भरे हुए समाज की चुनौती स्वीकार करने में सर्वथा असमर्थ रहता है।

हीन-भाव का एक और कारण ऐसे बच्चों के साथ उन लोगों का व्यवहार है, जिन्हें वे घृणा करते हैं या जिनकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। दैनिक जीवन के साधारण निरीक्षण तथा समाचार-पत्रों को पढ़ने से यह भली भाँति स्पष्ट हो जायगा कि दुनिया में ऐसे अनेक बच्चे हैं जिन्हें बोझ समझकर लोग घृणा करते हैं। सच तो यह है कि ऊँची सभ्यता को भी एक ऐसे समाज की आवश्यकता है जो बच्चों के प्रति की जाने वाली इन

क्रूरताओं को रोक सके।

संसार में घृणा का पात्र बनकर रहने में शारीरिक दण्ड का कष्ट उतना नहीं है जितना उनसे भी अधिक दुःखदायी मानसिक और नैतिक पतन का कष्ट। इससे हमारा यह मतलब नहीं कि शारीरिक दण्ड बुरा नहीं है, उसकी तो जितनी भी सामाजिक निन्दा की जाय थोड़ी है। घृणापूर्ण व्यवहार से दूषित ऐसे अस्वस्थ वातावरण में पले हुए बच्चों का दृष्टिकोण इतना संकुचित हो जाता है कि वे समाज के शत्रु बन जाते हैं। घृणा एक घोर समाज-विरोधी भाव है, जबकि प्रेम जीवन का बन्धन तथा मानव-साहचर्य की प्रेरणा है। जिस बच्चे को निरन्तर यह महसूस कराया गया है कि वह घृणा का पात्र तथा व्यर्थ का बोझ है उसे क्यों न विश्वास हो जाय कि उसके साथ रहने वाले उसके दुश्मन हैं तथा समाज में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। यही विश्वास समाज में विद्रोहियों, अपराधियों और आश्रितों को पैदा करने का कारण है।

सभी निरोधात्मक (रिप्रेसिव) अनुभवों का परिणाम करीब-करीब एक ही होता है। यदि कोई लड़का बहुत चालाक है तो उसके स्कूल के साथी उससे ईर्ष्या करने लगते हैं और कुछ दिनों तक उनके साहचर्य और सहयोग से वंचित रहने के बाद उसमें हीनता की भावना उत्पन्न होने लगती है। हालाँकि इस लड़के से घृणा नहीं की जाती, फिर भी अपने साथियों द्वारा अकेले छोड़ दिये जाने का अपमान वह महसूस करता है। लज्जा और

झिझक की एक आन्तरिक भावना के कारण किसी से इसकी चर्चा भी नहीं करता। धीरे-धीरे दबकर अपमान का यह भाव उसके हृदय में घर कर लेता है। इसी प्रकार कभी-कभी अत्यन्त कठोर धार्मिक शिक्षा के कारण भी बालक की भावनाओं का विरोध हो सकता है। सारांश यह कि कोई भी ऐसा अनुभव, जिससे हृदय में उठा हुआ भाव दब जाय, चाहे उसका सम्बन्ध स्कूल से हो, घर से हो या समाज से हो, मनुष्य के व्यक्तित्व को विकृत और कुण्ठित बना देता है। कारण यह है कि भाव-विशेष को, जिसकी अभिव्यक्ति समाज-सेवा के किसी कार्य में या मानव के व्यक्तित्व-निर्माण में होनी चाहिए, निकलने का कोई रचनात्मक रास्ता ही नहीं मिलता। इस युग के एक प्रमुख मनोविज्ञान-वेत्ता डॉक्टर डब्ल्यू० मैकाडॉगल का कहना है कि "प्रत्येक बच्चे को आत्म-विश्वास प्राप्त करने के लिए उत्साहित करना चाहिए, न कि दबाना। अनेक बच्चे अपनी श्रेष्ठतम सम्भावनाओं तक पहुँचने में असफल रहे हैं, क्योंकि उन्हें उत्साहित करने वाला कोई न था। कभी-कभी तो एक अकेली बात का प्रभाव इतना स्थायी पड़ जाता है कि वह आजीवन बना रहता है। मनुष्य की अनेक चिन्ताओं तथा ज्ञान-तन्तुओं से सम्बन्ध रखने वाली तकलीफों की जड़ में बचपन में मिली हुई सख्त भर्त्सनाएँ होती हैं। ये चिन्ताएँ जीवन-भर बनी ही नहीं रहतीं वरन् कभी-कभी अपराध-भावना का भी कारण बन जाती हैं।"

ऊपर वर्णन किये हुए बालक से मिलता-जुलता ही वह

बालक भी होता है, जिसका जन्म और पालन-पोषण ग़रीब और समझदार माता-पिता के घर में होता है। ऐसे बालक का अनुभव एक अलग ही प्रकार का होता है। हो सकता है कि इसका बचपन सामान्य तथा प्रसन्नतापूर्ण हो, परन्तु सयाना होने पर समाज में अपनी नीची स्थिति का स्मरण करके उसमें भी हीनता का भाव आ जाने की सम्भावना रहती है। यह कोई असाधारण स्थिति नहीं है, बल्कि इसी से हम उन बहुतेरे लोगों की उदासीनता और बेचैनी की व्याख्या कर सकते हैं, जिनका जीवन ऊपर से देखने में काफ़ी अच्छा कहा जा सकता है।

कब और कैसे हीनता का यह भाव प्रकट होता है, यह उन व्यक्तियों के वांच्छित लक्ष्य पर निर्भर रहता है। जिस व्यक्ति का आदर्श धन-प्राप्ति है, वह अपने से अधिक धनी पुरुष के सामने हीनता का अनुभव करेगा, तथा ऐसे लोगों के बीच, जो उससे कम धनी हैं, अपने को श्रेष्ठ समझेगा। दूसरा व्यक्ति, जो विद्या को महत्त्व देता है, अपने से बड़े विद्वान् के सामने हीनता महसूस करेगा। जिसके लिए समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त करने का ही सबसे बड़ा महत्त्व है, वह अपने से ऊँची हैसियत वाले के सामने हीनता का अनुभव करेगा। इसी प्रकार समाज के अन्य क्षेत्रों में भी होगा। परन्तु इस प्रकार की हीनता का भाव बहुत साधारण होता है, इससे कोई विशेष कष्ट नहीं होता, बशर्ते कि इसको बढ़ाकर दुःखदायी न बना लिया जाय। सामान्य बुद्धि तथा स्वाभाविक सहानुभूति ही मन की इन बोधगम्य दुर्बलताओं

को दूर करने का सरल उपाय है।

अन्तिम श्रेणी उन लोगों की है जिनके हृदयों में किसी गुप्त दोष या असफलता की स्मृति के फलस्वरूप गहरे अपमान तथा आत्म-ग्लानि की भावना समा जाती है। अपमान की यह भावना प्रेम में असफलता, समाज में अवनति, धन-हानि, या किसी गुप्त पाप आदि के कारण उत्पन्न हो सकती है। यदि उस व्यक्ति का अपनी योग्यता या आत्म-सम्मान का मापदण्ड काफ़ी ऊँचा है तो उसके 'अहं' को लगने वाली साधारण ठेस से भी उसकी आन्तरिक भावना को कितनी गहरी चोट लगेगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो पतित नहीं हो चुका है, किसी-न-किसी दिशा में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है, परन्तु जब उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी मान-हानि या दुर्बलता की बात उसका रास्ता रोक लेती है तो उसे गम्भीर क्षोभ होता है। दूसरी तरफ जब ऐसा व्यक्ति, जिसका पालन-पोषण धार्मिक वातावरण में होता है, किसी प्रलोभन से क्षण में गिर जाता है तो उसमें एक ऐसी अपराध-बुद्धि का विकास होने लगता है जो निरन्तर उसके मस्तिष्क को पाप की भावना से परेशान किये रहती है। धर्म-भ्रष्टता की यह भावना बहुत प्रचलित है तथा आधुनिक संसार की अधिकांश खींचातानी और बेचैनी का कारण है। इसकी सर्वव्यापकता तथा प्रभाव को देखकर कतिपय मानस-शास्त्री धर्म को वर्तमान सभ्यता का 'हौआ' कहने लगे हैं। परन्तु यह निर्णय तो एकदम उल्टा हो

जाता है। यदि हम धर्म को बिलकुल हटा दें, तो भी हमें धर्म की मूल भावनाओं, अर्थात् विवेक, सत्य तथा मानव-मानव के बीच एक स्वस्थ सम्बन्ध आदि, से तो काम पड़ता ही रहेगा। अतएव आज की अशान्ति तथा आन्तरिक वैषम्य का हल धर्म-विनाश नहीं, वरन् सच्चे धर्म का अनुसरण है।

• २ •

हीन-भाव के गौण लक्षण

आसानी के लिए हम हीनता के लक्षणों को दो भागों—गौण और प्रधान—में बाँट देते हैं।

इन भेदों को और भी स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि साधारणतः गौण लक्षणों का कारण बालक की शिक्षा का ग़लत तरीका होता है, जबकि प्रधान लक्षण किसी दूषित या दबाये हुए भाव से उत्पन्न अनुभव-विशेष के फल होते हैं।

गौण लक्षण भी नीचे लिखे भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—

(१) बिना किसी विचारपूर्ण उद्देश्य के अविश्राम मेहनत करना।

(२) सामाजिक भीरुता और लोगों के सामने पड़ने से बचना।

(३) शीघ्र-स्पर्शी (सेन्सिटिव) होना तथा स्वयं अपने को गिरा हुआ समझने लगना।

(४) छिछलापन (सुपरफ़िशैलिटी), जरूरत से ज्यादा आराम-तलबी इसकी विशेषता है।

(५) कभी एकदम चुप्पी साध लेना और कभी बराबर बातें करते रहना।

(६) अनावश्यक आलोचना करते रहने की धुन।

अविश्राम मेहनत इस बात की सूचक है कि मनुष्य निरन्तर यह महसूस किया करता है कि उसे और ज्यादा काम करना चाहिए। यदि उसे यह न प्रतीत होता कि अभी और कुछ करना बाकी है तो वह विकल न हो उठता। सारे ही निरुद्देश्य कार्य, प्रयोग तथा प्रयत्न इसी सत्य का निर्देश करते हैं। अनिद्रा का भी यही कारण है। यदि अनिद्रा-पीड़ित व्यक्ति का दिमाग स्थिर हो, तो वह सो सकता है। परन्तु 'वह सुरक्षित नहीं है' की अबोध चेतना उसे रात-दिन कभी भी चैन नहीं लेने देती।

विकलता की यह भावना एक परोक्ष भय के कारण उत्पन्न होती है। हो सकता है कि किसी को हमेशा अपने व्यापार या पेशे में असफल हो जाने का डर बना रहता है; अपनी तन्दुरुस्ती या मित्र की चिन्ता लगी रहती है या अपनी किसी गलती के प्रकट हो जाने का भय उत्पन्न हो जाता है। जो भी कारण हो, ऐसे व्यक्ति का आचरण उस चूहे का-सा होने लगता है जो किसी जाल में फँस गया है और भावी संकट की भावना से आशंकित है। इसके विपरीत, जब हम अपनी परिस्थितियों में सहज निश्चिन्तता का अनुभव करते हैं, तो हमारे दिमाग़ में किसी प्रकार की विकलता या निरुद्देश्य भाव नहीं आता। लेकिन जहाँ ये लक्षण दिखाई दें, समझ लेना चाहिए कि आदमी किसी दोष या संकट की भावना से आशंकित है। सम्भव है इस आशंका का कारण कोई तत्काल आने वाली विपत्ति न होकर कोई ऐसा बीता हुआ अनुभव हो, जिसे चेतन मस्तिष्क तो भूल गया

है, परन्तु अबोध चेतना में उसकी याद अब भी बाकी है। चूँकि उस बीते हुए अनुभव से उत्पन्न भय को पूरी तरह निकाला नहीं जा सका है, समय पाकर वही आशंका बेचैनी, अनिद्रा तथा निरुद्देश्य परिश्रम के रूप में प्रकट होती है। हीन-भाव के अन्य लक्षणों पर भी यही बात लागू होती है।

सामाजिक भीरुता तथा उसके अनुचर लज्जा और संकोच हीन-भाव के दूसरे लक्षण हैं। इसका कारण होता है बचपन या किशोरावस्था में मनुष्य का यह अनुभव करना कि लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं या अनावश्यक बोझ समझते हैं।

सामाजिक भीरुता तथा लोगों से दूर रहने की प्रवृत्ति का कारण इसके अलावा और कुछ नहीं हो सकता कि किसी ख़ास मौक़े पर व्यक्ति को कोई काम करने से झिड़ककर रोक दिया गया है या किसी और तरह से अपमानित कर दिया गया है। ऐसे व्यवहार से आत्म-विश्वास की भावना दब जाती है तथा दूसरों की—विशेषतः अपरिचितों की—उपस्थिति में अपनी हीनता का बोध होने लगता है। कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी दूसरों के पास पहुँच पाने में हिचक महसूस होती है। इसका कारण है किसी मित्र या अपरिचित के साथ हुए कटु अनुभव की दबी हुई भावना। समय पाकर वही भावना हीनता या झिझक के रूप में प्रकट होती है।

शीघ्र-स्पर्शी होना तथा स्वयं अपने को गिरा हुआ समझना भी सामाजिक भीरुता से मिलता-जुलता लक्षण है। सोचने की

बात है कि लोग क्यों ऐसा करने लगते हैं? केवल दो कारण हो सकते हैं—या तो मनुष्य किसी घोर अपराध की भावना से पीड़ित है; या किसी ऐसे कटु अनुभव से होकर गुज़रा है जिसमें घृणा, निन्दा, दोषारोपण या बहिष्कार का प्राधान्य रहा है। यही इन भावों की पृष्ठभूमि है और जब आत्म-हीनता की यह भावना अबोध मस्तिष्क का अंग बन जाती है, तो व्यक्ति के प्रत्येक आचरण, यहाँ तक कि स्वयं के प्रति, उसके विचारों में भी वह प्रकट होने लगती है।

स्त्री और पुरुष के आचरणों में अलग-अलग ढंग से इसका असर देखने में आता है। पुरुष हमेशा अपनी बातचीत, पहनावा, भोजन तथा दूसरे उसके विषय में क्या कहते हैं आदि बातों की तरफ सतर्क हो जाता है। स्त्री का आवश्यकता से अधिक ध्यान 'वह किस प्रकार का मोज़ा पहने, किस ढंग से अपने बाल सँवारे या उसके हाथों की रँगाई कैसी हो' आदि बातों में ही लगा रहता है। साथ ही सामान्य स्त्री-जाति की निन्दा और आलोचना करने की प्रवृत्ति भी उसमें आती जाती है। 'हर चीज़ ग़लत है या ठीक नहीं है' की प्रवृत्ति निरन्तर महसूस होने वाली व्यक्तिगत हीनता की भावना का स्थान ले लेती है।

छिछलापन एक और लक्षण है। यह उस व्यक्ति में देखने को मिलता है जो हमेशा थका हुआ होता है, जिसे किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं होती तथा जो हर चीज़ को थका देने वाली समझता है। यदि पुरुष हुआ तो सुस्ती के साथ अपनी

कुरसी में इस प्रकार पड़ा रहता है जैसे दुनिया से उसे कोई मतलब नहीं। यदि स्त्री हुई तो बार-बार एक ही रट लगाये रहती है, "मेरे प्यारे यह मुझसे नहीं हो सकता।" कवि ने भी अनजाने में यही भाव व्यक्त किये हैं—

"मैंने किसी वस्तु के लिए प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि एक भी मेरे प्रयत्न के योग्य न थी,

प्रकृति को मैंने प्यार किया, और प्रकृति के बाद कला को :

जीवन की उष्णता में मैंने अपने दोनों हाथ सेके; अब वह उष्णता लुप्त होती जा रही है और मैं भी चलने को तैयार हूँ।"

वस्तुतः अतिशय पूर्णता तथा अद्वितीयता की यह भावना हीनता का ही एक प्रतिरूप है।

कभी एकदम चुप्पी तथा कभी अतिशय बातूनीपन हीनता के अन्य लक्षण हैं। किसी समय व्यक्ति में भाववृत्तिकता (मूडीनेस), अन्तर्निरीक्षण (इनट्रासपेक्शन) तथा विकृतता (मॉरबिडिटी) के भावों की प्रधानता होती है तथा किसी समय वही हँसी से खिलखिलाता और उत्साह से भरा हुआ दिखाई देता है। दो विपरीत परिस्थितियों के बीच इधर-से-उधर झूलते रहना व्यक्ति के भावों में अस्थिरता का लक्षण है; और अस्थिरता हीन-भाव के प्रकट होने का एक और तरीका है। यदि भाव-सम्बन्धी यह स्थिरता मौजूद हो तो मनुष्य को इस प्रकार सामाजिक हर्ष और विषाद के झटके न खाने पड़ें, वर्ना ऐसा मालूम होता है कि उसके मानसिक विकास का रास्ता किसी स्थान पर एक ऐसे भावा-

त्मक (इमोशनल) अनुभव के कारण बन्द हो गया है, जो उसे आगे बढ़कर परिपक्क भावना की स्थिरता नहीं प्राप्त करने देता।

अनावश्यक आलोचना की धुन हीन-भाव का स्पष्ट लक्षण है। अनावश्यक आलोचना और छिद्रान्वेषण करने वाला अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होता है, जिसकी कल्पनाएँ भंग हो चुकी होती हैं। वर्ना जो व्यक्ति अपने को समाज का एक योग्य और उपयोगी अंग समझता हो, वह व्यर्थ की आलोचना में समय नहीं खोता।

ग़लती और सही की जाँच के लिए आलोचना आवश्यक होती है, परन्तु सच्ची आलोचना हमेशा रचनात्मक और यथार्थ होती है न कि व्यक्तिगत। जिस आलोचना का काम केवल बिगाड़ना है, वह निषेधात्मक यानी हीन-भाव का फल होती है।

हमने अब तक उन निषेधात्मक या अभावात्मक (नेगेटिव) प्रवृत्तियों का ज़िक्र किया जो हीन-भाव का एक रूप प्रदर्शित करती हैं। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि ये सब-की-सब निष्प्रयोजन हैं। किसी उद्देश्य-सिद्धि में काम आने के बदले ये व्यर्थता और बेबसी का ही कारण बनती हैं।

दूसरी तरफ़ हमें एक और तरह के लक्षण मिलते हैं जिनको हीन-भाव का धन-पक्ष (पॉज़िटिव साइड) कहा जा सकता है। आदमी महसूस करता है कि उसमें कमी है और उसे दूर करने के लिए कुछ करता है। यही 'कुछ', जिससे वह अपनी कमी को पूरा करना चाहता है, 'प्रतिपूरण' या मुआविज़ा (कम्पेंसेशन) कहलाता है। परन्तु इन परिस्थितियों में यह एक झूठा 'मुआविज़ा'

होता है, क्योंकि उसका समाज में कोई उपयोग नहीं। ये मुआविज़े भीतरी अपूर्णता को छिपाने के लिए काम में लाये जाते हैं। इस प्रकार के लक्षणों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) वह छोटा व्यक्ति, जिसके हर काम में बनने की प्रवृत्ति होती है।

(२) वह व्यक्ति, जो बड़े आडम्बर के साथ लम्बी-चौड़ी बातें करता है।

(३) वे लोग, जो आवश्यकता से अधिक बनाव-शृङ्गार करते हैं।

(४) वह स्त्री, जिसे पुरुषों जैसा आचरण करने की आदत है या इसके विपरीत।

(५) वह व्यक्ति, जो अपने को अद्वितीय समझता है।

(६) झगड़ालू और उत्पाती व्यक्ति।

ठिगने आदमी की शेखी मशहूर है। शारीरिक कमी के कारण ऐसा व्यक्ति हीनता की एक अबोध चेतना से पीड़ित रहता है। बड़ा बनने की झूठी शेखी इसी कमी को पूरा करने का प्रयत्न-मात्र है। यदि ठिगना आदमी चुपचाप पड़ा रहे, अपने लिए स्थान बनाने का प्रयत्न न करे तो लोग उसे रास्ते से निकालकर बाहर कर देंगे। लेकिन आत्म-रक्षा प्रकृति का नियम है अतः वह अपनी परिस्थितियों पर काबू पाने तथा व्यक्तिगत सुरक्षा प्राप्त करने के लिए हठ-प्रवेश या ज़बरदस्ती की प्रवृत्ति (अग्रेसिव एटीट्यूड) विकसित कर लेता है।

परन्तु इस ज़बरदस्ती के पीछे जब तक यथार्थ योग्यता न हो, यह एक झूठा मुआविज़ा रह जाता है। यदि यह ठिगना आदमी, जो ज़बरदस्ती के बल पर सुरक्षा प्राप्त करना चाहता है, एक ऐसी परिस्थिति में पड़ जाय, जहाँ उसकी ज़बरदस्ती को योग्यता न समझकर हँसी का कारण बना दिया जाय, तो उसका सारा साहस और उत्साह जाता रहेगा। एक बार जब उसका धोखा पकड़ा गया तथा उसकी झूठी शेखी का भण्डाफोड़ हो गया, तो फिर उसे आत्म-ग्लानि और निराशा के अगाध सागर में गोते लगाने पड़ते हैं। असली मुआविज़ा केवल ऊपरी और निराधार योग्यता नहीं, वरन् ऐसी योग्यता और सामर्थ्य है, जो मनुष्य को समाज का इतना आवश्यक अंग बना दे कि बिना उसके काम ही न चल सके। यही वास्तविक सुरक्षा तथा सच्चे आत्म-सम्मान का आधार है। जिसको अपनी स्वयं की योग्यता पर सन्देह हो गया हो, उसकी रक्षा केवल दो चीजों से हो सकती है—सच्चे भाईचारे की भावना तथा ठोस सामर्थ्य, चाहे वह कितनी भी थोड़ी क्यों न हो।

इसी प्रकार जो आदमी लम्बी-चौड़ी बातें करने वाला है, उसे भी एक झूठा ही मुआविज़ा मिलता है। इसके उदाहरण उन व्यक्तियों में मिलते हैं जो गरीब घर में पैदा होते हैं तथा थोड़ी शिक्षा पाये हुए होते हैं; परन्तु फिर भी यह दिखलाना चाहते हैं कि उनकी बौद्धिक योग्यता कम-से-कम औरों से अधिक है। बातें करते वक्त ऐसे लोग बराबर कोई-न-कोई साहित्यिक प्रसंग

खींच लायेंगे या अपनी बात को किसी विदेशी भाषा के उद्धरण के साथ समाप्त करेंगे। या थोड़े और आगे बढ़े हुए रहें तो बिना प्रसंग के भी आपको यह बताने का प्रयत्न करेंगे कि वे अमुक विदेशी भाषा जानते हैं या दूसरी भाषा का अमुक उपन्यास पढ़ सकते हैं। यदि कहीं इन विशेषताओं के साथ-साथ वे 'ऑक्स-फोर्ड-उच्चारण' की भी नकल कर सकते हैं, तो फिर कहना ही क्या है! तब तो उन्हें प्रतीत होगा कि वे सामान्य लोगों से कहीं बहुत दूर के जीव हैं।

आवश्यकता से अधिक बनाव-शृंगार करने वाले व्यक्ति का भी यही हाल है। अति शृंगार भी अति वाचालता की तरह अत्युक्ति है, और सभी अत्युक्तियाँ, चाहे वे जिस भी प्रकार की हों, स्पष्ट हीन-भाव की द्योतक हैं। जिस स्त्री में सहज आकर्षण नहीं है, वह अपने चेहरे की सादगी या आकृति के अनाकर्षण को कम करने के लिए आवश्यकता से अधिक सज-धज कर सकती है। यह आचरण ठीक वैसा ही है जैसा उस बिगड़े हुए बालक का, जो चिल्लाकर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है।

हमारी सभ्यता के विकृत दृष्टिकोण का एक स्पष्ट लक्षण यह है कि अनेक स्त्रियाँ अपने को तथा सारी स्त्री-जाति को हीन समझती हैं। सामान्य नारी में इस हीन-भाव का कारण वर्तमान समाज में पुरुष की श्रेष्ठता और प्रभुत्व है। इस स्थिति की प्रतिक्रिया यह होती है कि कितनी ही स्त्रियाँ इस अपमान के विरुद्ध विद्रोह करके पुरुष से कोई सम्बन्ध रखने या विवाह करने ही से इन्कार कर

देती हैं। अधिकांश ऐसी होती हैं जो इस कल्पित अपमान को स्वीकार करके जीवन-निर्वाह कर लेती हैं। आज के जीवन में हम अनेक ऐसी समस्याएँ देखते हैं जिनका सम्बन्ध या तो स्त्री-पुरुष की काम-वृत्ति से है या उनकी सामाजिक परिस्थिति से। इन सबके मूल में दोनों के बीच होने वाले इस संघर्ष से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक स्थिति है।

आज की अनेक औरतें पहनावे, बातचीत तथा रहन-सहन में पुरुषों की नकल करती हुई पाई जाती हैं। इस अस्वाभाविक आचरण के पीछे भी एक प्रकार का हीन-भाव है। इसी प्रकार कितने ही पुरुष, जिनमें कोई मानसिक अपरिपक्वता रह गई है या जिनके शरीर स्त्रियों से कुछ मिलते-जुलते हैं, अपने को पुरुषत्व-हीन समझकर औरतों की नक़ल करने लगते हैं।

यदि स्त्री और पुरुष का मस्तिष्क पूर्ण रूप से विकसित हो तो उनमें छोटे-बड़े का प्रश्न उठता ही नहीं। सच तो यह है कि स्त्री और पुरुष का स्वाभाविक अन्तर एक-दूसरे की पूर्ति के लिए बना हुआ है, न कि विरोध के लिए।

अपने को अद्वितीय समझने की प्रवृत्ति का भी कारण हीन-भाव है। इसकी तुलना उस बिगड़े हुए बालक के दृष्टिकोण से की जा सकती है, जिसका पालन ही इस विश्वास में हुआ है कि वह अद्वितीय है। ऐसा बालक शरीर से सयाना हो जाने पर भी भाव की दृष्टि से अक्सर कच्चा रह जाता है और दुनिया के प्रति वही भावुक दृष्टिकोण रखता है जैसा अपनी माँ के प्रति। यही कारण

है कि समाज में ऐसे अनेक स्त्री-पुरुष मिलते हैं, जो सर्वोच्च स्थान के अतिरिक्त और कहीं रहन-सहन ही नहीं रख सकते। हमेशा यही चाहेंगे कि प्रत्येक क्षेत्र में—फैशन में, व्यक्तित्व में, चरित्र में, योग्यता में—वे सबसे आगे रहें तथा उनका स्थान सामान्य लोगों से अलग और ऊँचाई पर हो। मनोवैज्ञानिक लोग ऐसे व्यक्तियों को 'जेहोआ-वृत्ति' (जेहोआ यहूदियों के देवता थे, जिन्हें अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने का खब्त था) का मरीज समझते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अद्वितीयता की शेखी में ऐसे लोग अपनी किसी भी इच्छा का विरोध नहीं सहन कर सकते और जब कभी उनका अपमान हो जाता है या उन्हें यह महसूस होता है कि लोग उनका 'उचित' आदर नहीं कर रहे हैं, तो ऐसे लोग पागल हो जाते हैं, आत्म-हत्या कर लेते हैं या समाज-द्रोही बन जाते हैं। प्रत्येक भाव, जो व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करता है, हीन-भाव है, क्योंकि स्त्री और पुरुष साहचर्य के लिए बनाये गए हैं, वैमनस्य के लिए नहीं।

आधुनिक संसार के अभिशापों में यह भी है कि कोई अपने को अद्वितीय समझे या मनुष्य-मनुष्य में अन्तर की भावना मौजूद हो। वर्तमान वर्ग-संघर्ष का कारण यही है तथा अनेक राष्ट्रों के तानाशाही दृष्टिकोण के मूल में भी यही भावना है। एक व्यक्ति जब अपने को अद्वितीय कहता है तो उसका सीधा अर्थ यह होता है कि दूसरा उससे घटकर या हीन है। यही कारण है कि यह दृष्टिकोण हमेशा पारस्परिक घृणा, विरोध और

संघर्ष का कारण बन जाता है। दूर तक विचार किया जाय तो इस प्रवृत्ति के मूल में भी एक प्रकार की हीनता का 'मुआविजा' प्राप्त करने का प्रयत्न दिखाई पड़ेगा, क्योंकि जो व्यक्ति सच्चे अर्थों में शिष्ट होता है वह अपने और समाज के छोटे-से-छोटे व्यक्ति में भी कोई भेद नहीं मानता।

अंत में हम झगड़ालू और ज़बरदस्ती करने वाले व्यक्ति का जिक्र करके इस श्रेणी की व्याख्या समाप्त कर सकते हैं। कुछ लोगों को ख़ामख़ाह अपना रौब जमाने और हर बात को ज़रूरत से ज्यादा जोर देकर कहने की आदत होती है। इन सभी प्रवृत्तियों के पीछे अपने को अरक्षित समझने की एक गहरी चेतना होती है। यदि मालिक अपने मज़दूरों को बार-बार डाँटा-फटकारा करता है तो इसका कारण उसके मन में छिपा हुआ यह भय है कि कहीं उन पर अनुशासन रखने तथा उनसे काम लेने की उसकी शक्ति कम न हो जाय। बह अपनी व्यक्तिगत योग्यता की कमी निरन्तर महसूस किया करता है। यही हाल उस पति का है जो अपनी पत्नी की हर वक्त ताड़ना किया करता है या उस पिता का है जो अपने बच्चों को बराबर पीटा करता है। जहाँ भी बेमतलब सख्ती, आपसी कलह, बदगुमानी, झूठ कसम और अनावश्यक सीनाज़ोरी के दुर्गुण दिखाई दें, समझ लेना चाहिए कि मनुष्य में आत्म-विश्वास की कमी है तथा वह अपनी असमर्थता की गहरी भावना से पीड़ित है।

हीन-भाव का आरम्भ कब और कहाँ से हुआ, इसका पता

या तो सूक्ष्म आत्म-विश्लेषण से लगाया जा सकता है या किसी कुशल मनोवैज्ञानिक की सहायता से। यदि हम अपने पिछले अनुभवों पर ठीक-ठीक ग़ौर करें तो काफी सही हद तक अन्दाज़ लगा सकते हैं कि बचपन में हमारी श्रेणी क्या थी—हम बिगड़े हुए बालक थे; लोग हमें घृणा करते थे; बेकार का बोझ समझते थे, या हम किसी शारीरिक दोष की भावना से दुखी रहा करते थे। अपनी श्रेणी निर्धारित कर लेने के बाद हम अपने प्रस्तुत लक्षणों का विश्लेषण करके उस अनुभव-विशेष का पता लगा सकते हैं, जहाँ से हमारा हीन-भाव आरम्भ हुआ। इतना कर लेने के बाद जब हमें अपनी असलियत का ज्ञान हो जाय तथा जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण किस हद तक विकृत हो चुका है, इस बात का अन्दाज़ हो जाय तभी हम अपनी तकलीफों और वेदनाओं को दूर करने का प्रयत्न आरम्भ कर सकते हैं।

• ३ •

हीन-भाव के प्रधान लक्षण

पिछले परिच्छेद में हमने हीन-भाव के गौण लक्षणों पर विचार किया, इस परिच्छेद में प्रधान लक्षणों का विश्लेषण करेंगे।

हीन-भाव विकृत भावों से उत्पन्न वेदना या तीव्र भावों के संघर्ष से बने हुए विचारों का एक ऐसा समूह है जो मनुष्य के व्यक्तित्व के अन्दर निवास तो करता है, परन्तु उसका अंग नहीं बन पाता, क्योंकि व्यक्ति के मानस को उससे निरन्तर चोट लगा करती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वह व्यक्तित्व से अलग है, फिर भी उससे लगा हुआ है। भावों के संघर्ष से उत्पन्न ये विचार या भाव उन अनेक परिस्थितियों के फल हो सकते हैं, जिनमें व्यक्ति-विशेष को समय-समय पर रहना पड़ा है। इन अनुभव-जन्य भावों को बाहर न निकालकर जब आदमी उन्हें मन में दबाये रहता है तो उनकी स्मृति निरन्तर उसके व्यक्तित्व को विकृत कर देती है। यदि उस व्यक्ति ने किसी मित्र से बातें करके या बिना कोई लज्जा या अपमान का भाव मन में लाये अपना अपराध स्वीकार करके उस कटु अनुभव को भुला दिया होता तो उसका मानस स्वस्थ बना रहता, यानी उसके मानस में कोई भी ऐसा भाव न होता जो उसके व्यक्तितत्व का

अभेद्य अङ्ग न हो। क्षोभ, क्रोध, लज्जा और अपमान के दबाये हुए भाव किसी का अंग नहीं बन सकते और यही कारण है कि इन भावों से पीड़ित व्यक्ति हमेशा इनको दबाने में ही परेशान रहता है। दबी हुई भावना बार-बार ऊपर आना चाहती है, परन्तु मनुष्य उसे दबाये रखना चाहता है। इस खींचातानी के ही फलस्वरूप मनुष्य में मानसिक संघर्ष या असामान्य व्यक्तित्व के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

ये लक्षण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

(१) भय—जो साधारण निषेधात्मक वृत्ति से लेकर नाड़ी-दुर्बलता या नाड़ी-भंग तक का रूप धारण कर सकता है।

(२) जीवन से घोर निराशा—जिसे अतिशय मदिरा-पान या समाज का भार बनकर जीवन व्यतीत करने में देखा जा सकता है।

(३) स्वाभाविक प्रेम में असफलता।

(४) कल्पना की उड़ान।

बार-बार शिथिलता महसूस करना या थक जाना किसी घोर मानसिक वेदना का लक्षण है। इस विषय के विज्ञापनों की बड़ी संख्या देखकर अनुमान किया जा सकता है कि मामूली परिश्रम से या बिना परिश्रम के ही इस प्रकार का अनुभव करने वालों की संख्या भी कम नहीं है। यहाँ हमारा मतलब केवल ऐसे लोगों से है जिनमें कोई अंग-भंग या शारीरिक रोग नहीं है। जहाँ आदमी समझता है कि शरीर से वह एकदम स्वस्थ है,

परन्तु फिर भी थकावट या कमज़ोरी महसूस किया करता है, वहाँ निश्चित समझ लेना चाहिए कि तकलीफ़ का कारण मानसिक है, अर्थात् मनुष्य एक ऐसे भाव-संघर्ष का शिकार है जो बिना किसी प्रयोजन के भी उसकी नाड़ियों की शक्ति को क्षीण करता जा रहा है।

इस अवस्था का सबसे अच्छा दृष्टान्त होगा एक ऐसी मोटर-कार की कल्पना, जो ब्रेक लगाकर चलाई जा रही है। ब्रेक के कारण पहियों पर बराबर रोक लगी हुई है, जिससे गाड़ी की चाल-भर ही धीमी नहीं होती बल्कि आवश्यकता से अधिक पैट्रोल भी खर्च होता है और गाड़ी की मशीन पर जितना पड़ना चाहिए उससे अधिक ज़ोर भी पड़ता है। जब मन में भावों का संघर्ष होता रहता है तो मनुष्य की भी ठीक यही दशा होती है। व्यक्तित्व के विकास में यह संघर्ष ब्रेक का काम करता है, नाड़ियों की ताक़त को बेकार खर्च करके शरीर की शक्ति को क्षीण कर डालता है। इस ब्रेक को हटा दीजिए, मोटरकार और व्यक्ति दोनों ही सामान्य रीति से कार्य करने लगेंगे।

जब यह मानसिक संघर्ष और भावों का निरोध काफी समय तक बना रहता है, तो शिथिलता और थकावट के नाड़ी-विकार में परिवर्तित हो जाने की सम्भावना हो जाती है। परन्तु जिसे नाड़ी-विकार कहते हैं, वह वास्तव में एक ऐसा खिंचाव है जिसका कारण मानसिक संघर्ष होता है, न कि नाड़ी की दुर्बलता, यानी यह रोग मानसिक होता है न कि शारीरिक। और इसीलिए

इसका उपचार भी औषधि या वायु-परिवर्तन से नहीं हो सकता। यदि इनसे कुछ लाभ हो भी गया तो वह अस्थायी होगा, जब तक मानसिक कारण दूर नहीं हो जाता।

नाड़ी-विकार (न्यूरेसथेनिया) का सबसे भयंकर रूप नाड़ी-भंग (नरवस ब्रेकडाउन) है। इस वेदनापूर्ण अवस्था में भावों का द्वन्द्व इस हद तक बढ़ जाता है कि सारे शरीर और नाड़ी-मण्डल की व्यवस्था ही बिगड़ जाती है, उनकी शक्ति क्षीण होने लगती है। इस अवस्था के पहले और बाद में अनेक प्रकार के भ्रम और डर मालूम होने लगते हैं—जैसे किसी ऊँची जगह या कार से गिर जाने, भीड़ में गायब हो जाने या अकेले छूट जाने का डर; किसी अज्ञात ख़तरे, कीड़े-मकोड़े या गन्दगी का डर; मृत्यु या पागलपन का डर आदि। कहने का अभिप्राय यह है कि ये तथा अव्यवस्थित कल्पना से उत्पन्न इसी प्रकार के अन्य अनेक भ्रम उसे सताया करते हैं। कुछ ऊपरी लक्षण भी दिखाई पड़ने लगते हैं, जैसे कँपकँपी, भूख न लगना, नींद न आना, अत्यधिक दुर्बलता या दिल बैठता हुआ प्रतीत होना आदि। यदि हम इन लक्षणों की तह में पैठें तो हमें एक ऐसे भय का पता चलेगा, जिसका सम्बन्ध या तो बचपन की किसी घटना से होगा या बहुत हाल की किसी घटना से। कोई एक ख़ास कारण ही इसके मूल में होगा, यह अनुमान लगाना मुश्किल है, क्योंकि यह व्यक्ति-विशेष के विश्लेषण पर निर्भर रहता है। ये कारण सैकड़ों प्रकार के हो सकते हैं, जैसे किसी अपमान से उत्पन्न क्षोभ या उसकी

पुनरावृत्ति की सम्भावना, किसी असफलता या मान-हानि का भय या किसी गुप्त पाप के प्रकट हो जाने का भय। 'मनुष्य समाज का भार है, लोग उसकी कद्र नहीं करते'—इस प्रकार के भाव से उत्पन्न ग्लानि भी विकार का कारण बन सकती है। इसी प्रकार की अनेक परिस्थितियों से उत्पन्न भय मनुष्य के मन को इतना संतप्त कर सकता है कि वह अपनी विकृत कल्पना तथा तज्जनित अव्यवस्थित भाव का दास बन जाय।

थोड़े ही दिनों की बात है जब इंगलैण्ड के एक बहुत बड़े जज ने बग़ैर किसी स्पष्ट सामाजिक, नैतिक या आर्थिक कारण के स्वयं अपने हाथों अपना जीवन समाप्त कर लिया। जज के एक मित्र ने, जो उसे बहुत निकट से जानता था, बतलाया कि जज ने स्थानीय मामलों से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे कई व्याख्यान अपनी अदालत में दिये थे, जिनकी सख़्त आलोचना की गई थी। इसी आलोचना से उत्पन्न क्षोभ उसकी आत्म-हत्या का कारण था। उस मित्र ने लिखा था, "जज ने महसूस किया कि उसकी हालत कितनी दयनीय है, वह अपना विचार प्रकट करने में भी स्वतन्त्र नहीं है। उसका ऊँचा पद तथा उसकी परम्परा ही उसकी महान् शक्ति और नैतिक उत्थान के मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा है। यही आन्तरिक द्वन्द्व तथा लगातार दो बीमारियों से उत्पन्न निराशा और थकान इस युग की एक बड़ी हस्ती के दुःखद अन्त का कारण बन गए।"

कुछ लोग, चाहे वे जज, डॉक्टर, मिनिस्टर या अभिनेता हों,

अपनी सफलता का एक माप-दण्ड बना लेते हैं और उसे प्राप्त करना ही अपने जीवन का ध्येय समझते हैं। ऐसे लोग जब अपने इस स्वप्न को भंग होता हुआ या प्रभाव को क्षीण होता हुआ देखते हैं तो उनके अन्दर अपमान और पराजय की भावनाओं का ऐसा घोर द्वन्द्व आरम्भ हो जाता है कि उनकी शारीरिक और नाड़ी-सम्बन्धी शक्तियों को जबरदस्त धक्का लगता है। कभी-कभी यह खिंचाव या द्वन्द्व इतना भयंकर रूप धारण कर लेता है कि मनुष्य को जीवन से भागकर आत्म-हत्या या पागलपन की ही शरण लेनी पड़ती है।

इसके बाद हम दूसरे प्रधान लक्षण अर्थात् जीवन से घोर निराशा पर आते हैं। वर्तमान समाज की एक प्रधान समस्या—इन निराश लोगों—को सभी जानते हैं, परन्तु इनकी इतनी बड़ी संख्या का कारण क्या है, इसे बहुत कम लोग समझते हैं। कोई भी स्त्री या पुरुष जान-बूझकर दूसरे का आश्रित, शराबी, धोखेबाज़ या समाज का कोढ़ बनना नहीं चाहता। ध्यान से देखा जाय तो इनमें सभी जीवन से भागे हुए निराश लोग मिलेंगे। हालाँकि लोग जल्दी स्वीकार नहीं करते, परन्तु इनमें से करीब-करीब सभी ऐसे व्यक्तित्व के उदाहरण हैं, जिन्हें अपने ऊपर से विश्वास उठ गया है। कोई भी व्यक्ति, जिसे अपनी योग्यता पर भरोसा है तथा जिसका आत्म-विश्वास बना हुआ है, इन पराश्रितों की संख्या बढ़ाने न जायगा। अवश्य ही ऐसे लोगों को जीवन के किसी अवसर-विशेष पर घोर निराशा या असफलता

का सामना करना पड़ा है और फिर उस असहाय परिस्थिति से निकलने के लिए इससे आसान और कोई रास्ता उन्हें न सूझा। संक्षेप में इसे जीवन-संग्राम के मोर्चे से भागना कहा जायगा।

हो सकता है कि इस निराशा के मूल में बिगड़ें हुए बालक का वह मोह-भंग (डिसइल्यूज़नमेंट) हो, जो उसे यह देखकर होता है कि दुनिया उसकी योग्यता का वह अतिरंजित मूल्य नहीं लगाती, जो उसने अनुमान कर रखा था। घृणा किये जाने वाले बालक के साथ होने वाली सख्ती या क्रूरता भी इसका कारण हो सकती है। कभी-कभी इस निराशा का सम्बन्ध प्रेम या व्यापार में होने वाली असफलता से भी होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि मूल कारण चाहे जो हो, जितने भी लोगों को हम समाज का भार बना हुआ पाते हैं, अवश्य ही वे किसी-न-किसी मोह-भंग, निराशा या व्यर्थता की गुप्त भावना से पीड़ित हैं।

स्वाभाविक प्रेम में असफलता हीन-भाव का एक दूसरा लक्षण है। हमारी आज की बनावटी और उलझी हुई सभ्यता में, जिसकी आत्मा रुग्ण हो चुकी है, यह मर्ज़ दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। अनेक लोग प्रेम और विवाह को एक पुरानी और फ़ैशन के खिलाफ़ चीज़ समझने लगे हैं। लेकिन ऐसा सोचने वाले यह नहीं जानते कि वे बचपन की ग़लत या दूषित शिक्षा के शिकार हैं, न कि एक नई विचारधारा के प्रवर्त्तक। स्पष्ट है कि यदि इन बिगड़े-दिमाग़ बहादुरों के तथाकथित प्रगति-

शील विचारों को मान लिया जाय तो शायद एकाध ही पीढ़ी में मानव-जाति समाप्त हो जायगी।

असलियत यह है कि प्रेम या विवाह केवल विषय-सुख का आवेग या सामाजिक शिष्टता-मात्र नहीं है। सृष्टि-संचालन के लिए आवश्यक आत्म-रक्षा या सृजन (सेल्फ-प्रेज़रवेशन) की मौलिक वृत्ति से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि जीवों में मौन-सम्बन्ध न हो तो जाति का विनाश हो जायगा। इस प्रकार हम देखेंगे कि विवाह की प्रथा आदिकालीन निषेधों या पिछड़ेपन की निशानी नहीं है, बल्कि लम्बे जातीय अनुभव, विचार और सामान्य बुद्धि का फल है। प्रेम के इस पवित्र बन्धन में जो लोग सन्तान वाले हो जाते हैं, वे इन्द्रिय-सुखों के शोषण से बच जाते हैं। समाज की रचना एक आधारभूत एकता के चारों तरफ की गई है, उसी पर वह रुका हुआ है और वहीं से आगे भी उसका विकास हो सकता है। इनमें से किसी भी सत्य का सामान्य उल्लंघन, युगों के कठोर अनुभव और प्रयोग से लाई गई प्रगति को ध्वंस करके मानव-जाति को पुनः आदिम अवस्था में पहुँचा देगा। हो सकता है कि इसमें बुराइयाँ आ गई हों, परन्तु संगठित समाज में प्रचलित (विवाह) प्रथा के अतिरिक्त अन्य किसी भी तरीक़े से स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होना मनुष्य को व्यक्तिगत पतन, सामाजिक अव्यवस्था और जातीय विनाश की ओर ले जायगा।

स्वाभाविक प्रेम में असफल होने वालों को हम निम्नलिखित

श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

(१) वे स्त्रियाँ, जो अपनी जाति को ही हीन समझती हैं।

(२) वे स्त्रियाँ, जिन्हें बचपन से ही पुरुषों से डरना या उन्हें घृणा करना सिखाया जाता है।

(३) स्त्रैण प्रकृति के पुरुष।

(४) वे पुरुष, जिन्हें स्त्रियों को तुच्छ समझना सिखाया जाता है।

(५) वे पुरुष, जो बचपन में स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले किसी दूषित या निरोधात्मक अनुभव से भयभीत हो चुके हैं।

इनमें से प्रत्येक श्रेणी स्वाभाविक प्रेम से भिन्नता का उदाहरण है। परन्तु स्वाभाविक प्रेम में असफलता का अर्थ है कोई-न-कोई गुप्त हीन-भाव। इन श्रेणियों के लोग स्वतन्त्रता और ऊँचे ज्ञान का बाहरी आडम्बर चाहे भी जितना कर लें, भीतर से वे किसी-न-किसी हीनता का अनुभव अवश्य करते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे हिम्मत के साथ आगे बढ़कर अपनी आवश्यकता, समाज की माँग तथा आत्म-रक्षा की स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार अपने यौवन का उद्देश्य अवश्य पूर्ण करते।

हीन-भाव का अन्तिम लक्षण है कल्पना की उड़ान। कल्पना की उड़ान का अर्थ है जिम्मेदारियों, बाधाओं और वेदनाओं से भरे हुए वास्तविक संसार से निकलकर सफलताओं और विजयों से भरे हुए मानस-संसार में विचरण करने लगना। सृष्टि के

आरम्भ से ही मानव-जाति ऐसी परिस्थितियों से, जो उसे हिम्मत पस्त कर देती हैं, निकलकर भागने के लिए इस मानस-यंत्र का प्रयोग करती रही है। अपने बन्दी-जीवन तथा अन्य राष्ट्रों की परतन्त्रता के दिनों में यहूदी जाति निरन्तर अपने शत्रुओं पर विजय पाने का स्वप्न देखा करती थी। दक्षिणी अमरीका के कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में अफ्रीका से ले जाये गए नीग्रो, जिन्हें गुलामों की तरह रखा जाता था, अपनी स्वतन्त्रता और विजय के गीत गाया करते थे। सब प्रकार से पूर्ण और आदर्श समाज की जितनी कल्पनाएँ (यूटोपियाज़) की गई हैं, सभी एक प्रकार की उड़ान है—प्रस्तुत से आदर्श तक पहुँच जाने की आत्मा की उड़ान।

मज़दूर-कुमारी दिन-भर अपने दफ़्तर या कारखाने में बन्द रहने के बाद शाम की थकावट और उदासी से छुटकारा पाने के लिए अपने सर्वप्रिय अभिनेता की उपासना में मग्न हो जाती है। कल्पना की दुनिया में वह अपने को शकुन्तला के आसन पर बिठा लेती है, जिसके सामने रूप-सम्राट् महाराज दुष्यन्त प्रेम और भक्ति में नत हैं। इस दृष्टिकोण से सिनेमा, थियेटर या अच्छा साहित्य एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। खतरा यही रहता है कि कहीं व्यक्ति इन स्वप्नों और कल्पनाओं का इस कदर बन्दी न बन जाय कि वह असली संसार में प्रयत्न और साहस की आवश्यकता ही भूल जाय। जब कभी वास्तविकता के क्षेत्र से यह मानसिक उड़ान सीमा के बाहर पहुँच

जाता है, तो व्यक्ति को काल्पनिक महानता और ऐश्वर्य का भ्रम होने लगता है। शक्ति और अधिकार वाले व्यक्तियों को यह भ्रम गम्भीर परिस्थिति में डाल सकता है। जैसा किसी ने भूतपूर्व कैसर विलियम के बारे में कहा है—"निस्सन्देह उसकी टूटी हुई बाँह से उत्पन्न हीन-भाव ही विश्व-विजय करने की उसकी महती आकांक्षा का असली कारण था। प्रौढ़ावस्था में जर्मन-चांसलर बिस्मार्क को, जो उसका रक्षक बना होता, कैसर द्वारा बरखास्त किया जाना इसी प्रबल आकांक्षा का फल था। इसी आकांक्षा ने उससे घोषणा करवाई थी कि 'मेरे बगैर संसार में कुछ न किया जायगा'।" और जैसा कि आजकल भी बार-बार कहा जाता है, १९१४-१८ के महायुद्ध की पराजय से उत्पन्न हीन-भाव ही है, जो आज जर्मनी को संसार का अद्वितीय, सर्वश्रेष्ठ और अमर राष्ट्र बनने की कल्पना में मग्न किये हुए है।

ये ही हीन-भाव के प्रधान लक्षण हैं। जैसा अब स्पष्ट हो गया होगा कि इस भाव का कारण या तो जीवन के प्रति एक ग़लत दृष्टिकोण है या भावों का विकृत विकास। इस परिस्थिति का सामना कैसे किया जाय, इस पर हम अगले परिच्छेद में विचार करेंगे।

● ४ ●

हीन-भाव का विश्लेषण और उपचार

हमें यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति में हीन-भाव का पाया जाना कोई असाधारण बात नहीं है। शायद बहुत थोड़े-से लोग ऐसे हैं जो इससे एकदम बचे हों, वर्ना सभी किसी-न-किसी समय इस भाव का अनुभव करते हैं। आपको यह जानकर संतोष होगा कि संसार के अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों ने ऐसे शारीरिक दोषों पर विजय पाई है, जिनका यदि उन्होंने साहस के साथ सामना न किया होता तो सम्भवतः वे जीवन-संग्राम से निराश हो गए होते। उदाहरण के लिए जूलियस सीज़र को ले लीजिए। वह शरीर से बहुत कमज़ोर था तथा उसे मिरगी के दौरे आते थे। परन्तु सीज़र ने इस शारीरिक असमर्थता को अपनी कमज़ोरी पर विजय पाने तथा अपने जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा न बनने दिया। बोदोवेन एक विचित्र प्रकार के बहरेपन से पीड़ित रहा करता था, परन्तु इस कमी को पूरा करने के सतत प्रयत्न ने ही संगीत समझने और उसका आनन्द लेने की उसकी योग्यता को बहुत बढ़ा दिया। यदि वाइकाउण्ट स्नोडेन २७ वर्ष की अवस्था में एक भयंकर साइकल-दुर्घटना में न पड़ा होता तो इसमें सन्देह है कि वह इतनी लगन और परिश्रम के साथ अपना सारा जीवन समाज-सुधार में लगा सकता। प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट

बचपन में शरीर से बहुत कमजोर थे और इसका उनके व्यक्तित्व और आचरण पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। उनका अटूट आत्म-विश्वास और विरोधियों पर विजय पाने की शक्ति बचपन की इस दुर्बलता के विरुद्ध संघर्ष का ही फल है।

हीन-भाव का होना कोई बड़ी चिन्ता की बात नहीं है। असल चीज़ तो यह है कि उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है या उस पर हम किस प्रकार विजय पा सकते हैं। यदि हीन-भाव का मुक़ाबला साहस और परिश्रम के साथ किया जाय तो वह व्यक्ति को सफलता के शिखर पर पहुँचा सकता है। दूसरी तरफ़ यदि इसे व्यक्तित्व के ऊपर हावी हो जाने दिया गया तो वह स्वास्थ्य और चरित्र दोनों को बिगाड़ देगा।

जैसा पहले भी बताया जा चुका है, शरीर के अंगों में किसी प्रकार का दोष आ जाना हीन-भाव का एक प्रधान कारण है। भावुक बच्चों में इस प्रकार की कमज़ोरी या अंग-दोष हीनता की ज़बरदस्त भावना पैदा कर देता है और किशोर या प्रौढ़ावस्था में इसका भयंकर असर जीवन से एकदम निराशा के रूप में प्रकट हो सकता है। पिछले परिच्छेदों में हमने इस प्रकार की निराशा तथा अन्य लक्षणों की व्याख्या की है; उनका फिर से विस्तार करना आवश्यक नहीं।

हीन-भाव से पीड़ित बालक या प्रौढ़ को अपनी हीनता का सही मुआविज़ा प्राप्त करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि हीनता का कारण कोई शारीरिक दोष

है तो व्यक्ति को ऐसा हुनर प्राप्त करने की ट्रेनिंग दी जानी चाहिए, जो स्वयं उसकी निगाहों तथा समाज की निगाहों में उसकी योग्यता और मूल्य को उसकी कमी के मुक़ाबले कहीं बहुत अधिक बढ़ा दे।

यदि शारीरिक दोष ऐसा है जिसे दूर नहीं किया जा सकता या जिसका मुआविज़ा हासिल नहीं किया जा सकता, तो उसे साहस और स्वाभाविक भाव से स्वीकार करना चाहिए। आख़िर दोष के लिए उस व्यक्ति की तो कोई जिम्मेदारी है नहीं, और न ऐसे दोषों की तरफ़ कोई निन्दा या अपमान की दृष्टि से ही देखता है। यदि किसी के चेहरे या आकृति में, हाथ, पैर या आँख में कोई खराबी हो, बालों का रंग साधारण से भिन्न हो या वे अवस्था से पहले ही गिर गए हों, तो शायद ही कोई इनकी तरफ़ ध्यान देता हो। असल चीज़ जो देखी जाती है, वह है मनुष्य का भाव तथा समाज के प्रति उसकी सेवा। मनुष्य के आदर का कारण उसकी शारीरिक पूर्णता नहीं (हालाँकि उसे क्षुद्र नहीं कहा जा सकता) बल्कि समाज के लिए उसकी उपयोगिता है।

जो विशेषताएँ हमें अपने सामान्य साथियों से ऊपर उठा देती हैं, वे हैं हमारा व्यक्तित्व, सामर्थ्य, योग्यता तथा विशेष कौशल। इस प्रकार जहाँ एक तरफ़ ये हमें उनसे अलग करती हैं, वहीं दूसरी तरफ़ व्यक्ति की मानवोचित दुर्बलताएँ तथा उसके सम्मिलित सुख-दुःख ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसे और उसके साथियों को एक बना देती हैं। इस प्रकार हमारी असमर्थता का

चाहे जो भी रूप हो, उसे हमें भाईचारे के बन्धन में बाँधना चाहिए, न कि अलग करना।

दूसरी श्रेणी, जो हीन-भाव का शिकार बनती है, वह है बिगड़े हुए बालकों की, जिन्हें बचपन से ही यह विश्वास करना सिखाया जाता है कि अपनी दुनिया के केन्द्र वे ही हैं। एक प्रकार से उनका विश्वास ठीक भी है, क्योंकि अपने घर के वातावरण में सचमुच उनकी वही स्थिति रही है। लेकिन इस विश्वास को लेकर जब वे विस्तृत संसार में प्रवेश करते हैं तो उनका सारा स्वप्न भंग हो जाता है। बाहर की दुनिया उनके अतिरंजित विचारों तथा अपने को अद्वितीय समझने की उनकी भावना की तरफ़ निगाह भी नहीं डालती; उल्टे वह अपने ही निराले ढंग में मस्त होती है। यदि बिगड़े हुए बालक में इस नई परिस्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक योग्यता और साहस की कमी हुई तो वह जीवन से एकदम निराश होकर या तो उन बुराइयों का, जिनका हमने पिछले परिच्छेद में ज़िक्र किया है, शिकार हो जायगा या किसी नाड़ी-विकार का रोगी बन जायगा।

एक-दो दृष्टान्त देकर हम इस परिस्थिति को और भी स्पष्ट कर सकते हैं। प्रोफेसर मेकेन्ज़ी ने अपनी एक पुस्तक में बतलाया है कि किस प्रकार एक बी० ए० का विद्यार्थी अपने दूसरे वर्ष में एकदम निराश होकर बैठ गया। उसे अपने काम में कोई भी दिलचस्पी न रह गई तथा उसमें नाड़ी-विकार (न्यूरेसथेनिया) के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने आगे लिखा है कि "पता

लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि जिस स्कूल से यह लड़का आया था, वहाँ इसने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। जब मैंने उसके स्कूल-जीवन का अन्वेषण करना आरम्भ किया तो फ़ौरन मुझे पता चला कि स्कूल में उसको ऊँची सफलता का कारण पढ़ाई के विषयों में उसकी कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं, वरन् शाबासी पाने की एक ज़बरदस्त आकांक्षा थी और दूर तक खोज करने पर मालूम हुआ कि काफ़ी ऊँची अवस्था में किये हुए एक दूसरे विवाह की वह अकेली सन्तान है तथा पहली स्त्री के सयाने बच्चों के मुक़ाबले वह घर-भर का दुलारा 'छोटा मुन्ना' बनकर रहा आया है। क्लास में पहले नम्बर के अलावा और कहीं बैठना वह सहन नहीं कर सकता था, परन्तु यूनिवर्सिटी में यह बात बड़ी मुश्किल होती है। नतीजा यह हुआ कि इस धक्के को वह बरदाश्त न कर सका और उसने हिम्मत छोड़ दी। लेकिन निरन्तर सम्पर्क और साहचर्य द्वारा ज्यों-ज्यों हम लोगों ने उन घटनाओं और प्रेरणाओं को, जिनका उसके बचपन और स्कूल-जीवन में प्रभुत्व था, धीरे-धीरे उसकी स्मृति से निकाल दिया, त्यों-त्यों उसकी तन्दुरुस्ती और दिलचस्पी भी लौट आई और आज वह अपनी योग्यता के अनुसार जितना अच्छा हो सकता है, काम कर रहा है।"

दूसरा उदाहरण एक ऐसे बालक का है जो अपने माता-पिता की आँखों का तारा था। वह उनकी इकलौती सन्तान था तथा बचपन में उसका अतिशय लाड-प्यार किया गया था। जब वह तीन बर्ष का था, बहुत ज़ोर से बीमार पड़ा। माता-पिता उसके

जीवन से निराश हो गए थे, परन्तु फिर भी उनकी अनवरत सेवा और शुश्रूषा के कारण बालक अच्छा हो गया। लेकिन उसके बाद भी, जब बालक एक प्रकार से समाज की सम्पत्ति बन जाता है, इस बात में उसकी मदद करने की जगह कि बालक अपनेपन को भूल न जाय, उन्होंने बराबर उसकी प्रशंसा करना तथा उसकी सुन्दरता और शक्ति का ज़िक्र करना जारी रखा। यह प्रशंसा उसके जीवन-भर चलती रही और नतीजा यह हुआ कि अपनी दुनिया के बाहर वह न जा सका। उसके माता-पिता उसकी छोटी-छोटी ज़रूरतों और इच्छाओं को भी पूरा करते रहे। जब वह कालेज में दाख़िल हुआ तो उसे वहाँ अच्छा न लगा, उसके साथियों ने उसे यों ही साधारण लड़का समझा। यह चीज़ ऐसी थी जिससे उसके अहंकार को चोट लगी थी, क्योंकि अब तक तो उसने अपने को सुन्दरता और गुणों का अवतार समझ रखा था। कई कालेज बदलने के बाद उसने किसी तरह डिग्री प्राप्त की। अब भी अद्वितीयता का उसका पुराना भाव बना था। उसे एक बड़े कारखाने में रसायन-शास्त्री (कैमिस्ट) का स्थान मिल गया। यहाँ भी लोगों ने उसकी योग्यता में कोई ख़ास बात न देखी और उम्मीद करने लगे कि दैनिक वेतन के लिए वह पूरा काम करेगा। ऊपर से कारख़ाना वह जगह ठहरी जहाँ अपना काम पूरा करने के लिए प्रशंसा तो दूर रही, छोटी-सी ग़लती के लिए भी ठोकरें अवश्य मिलती हैं। किसी ने भी उसका कोई ख़ास ख़याल न किया। उसे यह देखकर कि उसका अपना कोई आफिस नहीं है, और भी निराशा हुई। उसकी समझ में नहीं आता था कि आख़िर

कुछ हफ़्ते काम करने के बाद उसकी तरक्की अब तक क्यों न हुई? अपने ख़याल से जितना वेतन उसे मिलता था उसकी योग्यता उससे कहीं बहुत अधिक थी। दूसरी तरफ़ कारखाने के लोग समझने लगे कि वह एक अजीब किस्म का आदमी है और किसी ने भी घर की तरह उसकी प्रशंसा न की। क्रोध के आवेश में एक दिन उसने मैनेजर से कह ही दिया कि यदि उसका ख़याल न किया गया तो वह वहाँ नहीं रुक सकता। मैनेजर ने उसे समझाया, ज्यों ही उसे मालूम हो जायगा कि उसकी योग्यता अधिक हो गई है, फ़ौरन वह उसकी तनख्वाह बढ़ा देगा। अन्त में उस व्यक्ति ने नौकरी छोड़ दी और आज वह बिना किसी काम का है। वह घर पर पड़ा रहता है, जहाँ उसे वह प्रशंसा और ख़ातिर मिलती है, जिसे वह बाहर की क्रूर दुनिया में, जो सफलता के अलावा और किसी चीज़ की प्रशंसा नहीं करती, कभी न मिल सकी।

बिगड़े हुए बालक को सयाना होने पर यह समझना ही पड़ता है कि वह अद्वितीय नहीं है और दुनिया से उसे उस रियायत और लाड-प्यार की आशा न करनी चाहिए जो उसके माता-पिता से मिलता रहा है। उसे अदम्य साहस, अटूट निश्चय, योग्यता तथा सहयोग से जीवन का सामना करते हुए विशाल मानव-समाज की एक स्वस्थ इकाई बनकर रहना चाहिए।

ऊपर की बातें उस बालक पर भी, जो घृणा और उपेक्षा से भरा हुआ बचपन देखकर सयाना होता है, इतनी ही लागू होती

हैं। कितने ही समझदार लोग इस बात को कि अमुक व्यक्ति कहाँ और किस माता-पिता से पैदा हुआ है, कोई महत्त्व नहीं देते। वे इतना ही जानना चाहते हैं कि वह क्या कर सकता है और उसका अपने प्रति क्या विचार है। ऐसे लोगों का उद्देश्य केवल यही है कि मनुष्य सहयोग और सेवा के भाव से औरों के पास जायगा तो वह देखेगा कि दुनिया उससे दोस्ती करने तथा उसकी मदद करने के लिए तैयार है।

फिर भी चाहे यह उपदेश कितना ही सत्य और अच्छा क्यों न हो, अनेक ऐसे स्त्री और पुरुष मिलेंगे जो बचपन के किसी दूषित अनुभव के कारण इस उपदेश का पालन करने में असमर्थ होते हैं। उनके लिए अपने गहरे हीन-भाव पर अधिकार पाना मुश्किल हो जाता है।

४० वर्ष के एक आदमी का किस्सा है। संयोग ऐसा हुआ कि इस आदमी ने एक के बाद दूसरी करके लगातार कई नौकरियाँ खो दीं। उसे एक नई नौकरी की दरख़्वास्त लेकर लन्दन भेजा गया। जब मैनेजर उससे बातचीत करने के लिए आया तो वह बुरी तरह काँपने और हकलाने लगा। 'हाँ' की जगह 'नहीं' और 'नहीं' की जगह 'हाँ' कहकर उसने इतना बुरा ख़याल पैदा किया कि उसे अयोग्य कहकर हटा दिया गया। एक दूसरी नौकरी की खोज में वह किसी और शहर में गया। ज्यों ही मैनेजर सामने आया, अभागे आदमी ने दोनों हाथों से मुँह छिपाकर बच्चों की तरह सिसकियाँ भरना आरम्भ कर दिया। अपने रोने का वह

कोई कारण न बता सका। कोई ज्ञात कारण था भी नहीं। परन्तु उसके इस स्पष्ट हीन-भाव का कारण उसके बचपन से निकाला जा सकता था। एक लम्बे परिवार का वह आख़िरी बच्चा था। उसकी कोई ज़रूरत न थी। स्वयं अपने माँ-बाप से भी उसे पता चला कि उसका जन्म यों ही अकस्मात् हो गया। उसकी शिक्षा में कोई विशेष दिलचस्पी न ली गई। उसकी मौजूदगी में अन्य भाई और बहनों की बराबर तारीफ़ की जाती थी। अपनी तारीफ़ सुनने का मौक़ा उसे कभी न मिला। उसके पिता को बार-बार उससे यह कहते रहने का अभ्यास-सा हो गया था, "पता नहीं तुम ज़िन्दगी में क्या कर पाओगे। एक भी चीज़ तो ऐसी नहीं जिसे तुम ठीक-ठीक कर सको। किसे तुम सोचते हो कि तुम्हें नौकरी दे देगा?" एक रात लोगों ने उसे मकान के सबसे ऊपरी कमरे में सिसकियाँ भरते पाया तथा उसी रुखाई के साथ पूछा, "तुम्हें क्या हो गया?" "मेरी किसी को दरकार ही नहीं।" रोते हुए उसने कहा और बात सच थी। कोई भी तो उसे नहीं चाहता था। फिर इसमें क्या ताज्जुब है कि जब किसी को उस पर विश्वास न था, तो उसको अपने ऊपर भी विश्वास न रह गया।

यही उपेक्षा और घृणा किये जाने वाले बालक की करुण कहानी है। बचपन में ही बेचारे के मन में हीनता का भाव इस क़दर समा जाता है कि किशोर और प्रौढ़ावस्था तक बना रहता है और इस प्रकार साहस, सहयोग और आशा के साथ संसार में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकने की उसकी योग्यता मारी

जाती है। उपेक्षित बालक का पालन ही इसी विश्वास में होता है कि समाज में उसकी कोई उपयोगिता नहीं और इसलिए उसे जीने का भी कोई अधिकार नहीं है। ऐसे अभागे व्यक्ति का उद्धार इसी में है कि वह कोई ऐसा हुनर सीख ले जो उसे अपने साथियों की मित्रता और आदर का पात्र बनाकर उसके आत्मसम्मान को जागृत कर सके। यदि बचपन में उसे कोई नहीं चाहता था तो सयाना होने पर ऐसा बन जाना चाहिए कि सभी लोग चाहने लगें। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए उसे जीवन का सामना निरन्तर अध्यवसाय, साहस और सन्तोष के साथ करना पड़ेगा। इन सबमें देर भले ही लगे या कुछ समय तक लोग इसे ग़लत समझें, परन्तु अन्त में निःस्वार्थ सेवा और मानव-प्रेम का फल लोगों की सदिच्छा तथा मित्रता में मिलना अवश्यम्भावी है और तब सम्भवतः ही मनुष्य-समाज में अपनी चाह और आवश्यकता भी महसूस करने लगेगा। जैसा किसी प्राचीन महर्षि ने कहा है—एक बार खोकर ही हम अपने को पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

हीन-भाव पर अधिकार पाने के लिए यह परमावश्यक है कि हम अपनी प्रधान प्रवृत्ति का ठीक-ठीक पता लगा लें। दूसरे शब्दों में, हमें अपने जीवन-लक्ष्य का भली भाँति विश्लेषण कर लेना चाहिए। कहीं हमारा लक्ष्य ऐसा तो नहीं है जिसे प्राप्त करना असम्भव हो या इतना ऊँचा तो नहीं है कि उस तक पहुँचना हमारी सामर्थ्य के बाहर हो? उस लक्ष्य के पीछे कोई स्वार्थ-

भावना है या समाज-हित की भावना है? कोई दूसरा लक्ष्य तो ऐसा नहीं है जो हमारी स्वाभाविक योग्यता और सामर्थ्य के अधिक अनुकूल है? जीवन में उसका उपयोग अच्छा होगा या बुरा?

जैसा कि हमने पहले भी बताया है, इन बातों का पूर्ण विश्लेषण कर लेना इसलिए आवश्यक है कि जब मनुष्य अपने सामने कोई असम्भव, स्वार्थपूर्ण या व्यर्थ का लक्ष्य रख लेता है और उसे हमेशा ही अपने से दूर भागता हुआ देखता है तो उसकी निराशा का ठिकाना नहीं रहता तथा उसे अपने सारे परिश्रम की व्यर्थता पर गहरा क्षोभ हो उठता है। उचित लक्ष्य के लिए परिश्रम करने से निराशा कभी नहीं होती चाहे वह लक्ष्य प्राप्त हो या न हो, क्योंकि अच्छा परिश्रम स्वयं भी एक प्रकार का फल है। जब भी हमारा लक्ष्य ग़लत होता है और हम व्यर्थ की व्यक्तिगत शान के लिए परिश्रम करते हैं, तभी लक्ष्य-प्राप्ति में असफलता हमारे निरुत्साह, मस्तिष्क-विकार या अस्वास्थ्य का कारण बनती है। इस विषय पर कविवर हिलेर बेलॉक के शब्द कितने सुन्दर हैं—

"सुखमय घरों को छोड़कर जब हम अपने अज्ञात लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं तो आरम्भ से लेकर लक्ष्य तक पहुँचने की हमारी थकान का सुन्दर उपहार मित्रों के स्नेह और हास्य से बढ़कर और क्या हो सकता है।"

ऐसा बहुधा देखा गया है कि जब मनुष्य जीवन के प्रति

आवश्यकता से अधिक अपने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को समझ जाता है और उसकी जगह उससे अधिक स्वस्थ सामाजिक दृष्टि-कोण धारण कर लेता है, तो उसका हीन-भाव अपने-आप दूर हो जाता है। मानसिक स्वास्थ्य के दो प्रधान शत्रु हैं—स्वार्थ और अज्ञान। इन पर विजय पाना परमावश्यक है और यह तभी हो सकता है जब हमारे अन्दर आत्म-ज्ञान का प्रकाश हो जाय तथा हम दूसरों के हित को अधिक महत्त्व देने लगें। इस ख़याल से यदि हम बैठकर सभी सम्भावित ग़लत दृष्टिकोणों तथा विकृत भावों के कारणों का विश्लेषण कर लें तो इससे बड़ी सहायता मिलेगी। नीचे लिखी सूची को हम नमूने के तौर पर ले सकते हैं—

शारीरिक दोष

क्या मैं अपने अंग-दोष को आवश्यकता से अधिक महत्त्व तो नहीं देता ?

क्या मैं और लोगों की राय की बहुत अधिक परवाह तो नहीं करता ?

क्या मैंने अपने दोष का कोई अच्छा-सा 'मुआविज़ा' प्राप्त करने का प्रयत्न किया है ? इत्यादि।

बिगड़ा हुआ बालक

क्या मैं अब भी बचपन के ही भावों में डूबा रहता हूँ ?

क्या मैं आशा करता हूँ कि दुनिया मेरे साथ उसी प्रकार का व्यवहार करे जैसा मेरे माता-पिता किया करते थे ?

क्या मैं अपने को अद्वितीय या औरों से बढ़कर समझता हूँ या लोगों के सामने स्वार्थपूर्ण माँगें पेश कर दिया करता हूँ ?

क्या जब लोग मेरी तरफ आकर्षित नहीं होते या आदर प्रकट नहीं करते तो मैं निराश हो जाता हूँ ?

क्या बड़ा बनने का मेरा लक्ष्य स्वास्थ्य और समाज के लिए भी उपयोगी है ?

किस व्यक्ति के मुक़ाबले में बड़ा हो जाना चाहता हूँ और क्यों ?

क्या मैं जीवन का सामना आशा और साहस के साथ कर रहा हूँ ? इत्यादि ।

घृणा और उपेक्षा किया हुआ बालक

क्या मुझे इस बात से भी डर लगता है कि लोग मुझे एक आदरणीय ग़रीब समझें ?

किस व्यक्ति से मैं अपने को हीन समझता हूँ और क्यों ?

क्या अपने बचपन के अनुभवों के कारण मैं अपने साथियों से घृणा करता हूँ ?

क्या मैं सामाजिक कायर हूँ या लोगों के सामने जाने से झिझकता हूँ ?

क्या मैं जीवन की ज़िम्मेदारियों से भाग रहा हूँ ?

क्या किसी भय के कारण मैं अपने भावात्मक जीवन का निरोध कर रहा हूँ ? इत्यादि ।

जब आप इन तथा ऐसे ही और प्रश्नों का उत्तर निकालकर अपने को ठीक-ठीक समझ लेते हैं, तब आपको अपने ठोस गुणों का पता लगाना चाहिए। दुनिया में ऐसा कोई है ही नहीं, जिसमें कोई-न-कोई अच्छा गुण न हो या ऐसी कोई योग्यता न हो, जिसमें वह औरों से बढ़कर हो। हीन-भाव से पीड़ित व्यक्ति को शान्तिपूर्वक उन गुणों को आँकना चाहिए और उन्हीं के आधार पर प्रयत्न करना चाहिए। हमेशा आपको अपने कल्पित दोषों के मुकाबले में अपनी योग्यता और सामर्थ्य पर, चाहे वह जिस भी दिशा में हो, अधिक ज़ोर देना चाहिए।

हाल में ही हमने एक ऐसी युवती नर्स के बारे में पढ़ा जो भयंकर हीन-भाव से पीड़ित रहा करती थी। एक शाम को डॉक्टर लेक्चर दे रहा था और विषय समाप्त कर लेने के बाद उसने लड़कियों से प्रश्न पूछने प्रारम्भ किये। पहली नर्स ने सवाल का जवाब अधूरा दिया। दूसरी लड़की के जवाब पर डॉक्टर ने बहुत नाक-भौं सिकोड़ीं। तीसरी लड़की जब जवाब देकर बैठ गई तो डॉक्टर ने उसके जवाब की खिल्ली उड़ाई। अब जब हीन-भाव से पीड़ित नर्स की बारी आई तो वह एकदम घबरा गई। उसने बिलकुल ही ग़लत जवाब दिया।

इस घटना ने उसे बेहद दुखी कर दिया और उसे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। उस रात उसकी नींद हराम हो गई और वह बिस्तर में पड़े-पड़े सोच रही थी कि किस प्रकार अपनी इस दुर्बलता पर विजय पाये। एकाएक उसे याद आया कि कुछ ही

दिन पहले उसने एक पर्चा किया था जिसके ऊपर उसी डॉक्टर ने लिखा था, "अपनी श्रेष्ठता के लिए दर्शनीय।" इस घटना ने उसे विचार-मग्न कर दिया। बिस्तर में लेटे-लेटे ही उसने अपने-आप से कहा, "यदि मैं उस पर्चे को इतना अच्छा लिख सकी, तो मेरा दिमाग़ ज़रूर अच्छा होना चाहिए।" वहीं से उसने अपने ठोस गुणों का विकास करना आरंभ किया और अंत में अपने हीन-भाव पर पूरी तरह काबू पा लिया। हीन-भाव हम सभी में मौजूद हैं, कोई भी उनसे बचा नहीं है, परन्तु साथ ही हमारे ठोस भाव भी हैं जिनका सम्बन्ध हमारे विशिष्ट गुणों तथा सामर्थ्य से है, चाहे वे जिस भी प्रकार के हों, हमारा काम इन्हीं ठोस गुणों के आधार पर जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण का निर्माण करना है न कि हीन-भावों के आधार पर। और तभी हम श्रेष्ठता प्राप्त करके आत्मसम्मान का विकास कर सकते हैं।

हमने गहरे हीन-भावों का विश्लेषण अभी तक छोड़ रखा था, क्योंकि उनके लिए अलग व्याख्या की आवश्यकता है। पिछले एक परिच्छेद में दिखाया गया है कि ये भाव बचपन या सयानेपन के किसी दूषित अनुभव के फल होते हैं। इस अनुभव-जन्य भाव को दबा देने से वह घटना-विशेष तो भूल गई, परन्तु उससे उत्पन्न हीन-भाव मानव की अबोध-चेतना का अंग बन गया। सच पूछिए तो इन भावों की विशेषता ही यह है कि मूल घटना की स्पष्ट स्मृति तो जाती रही, परन्तु हीन-भाव विष की

तरह अबोध चेतना में चक्कर काटता बना रहा। जब तक इस विष को निकाल नहीं दिया जाय, मन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता।

प्रयोग करके देखा गया है कि जब उस मूल घटना को याद करके उससे सम्बन्धित हीन-भाव को चेतन मानस का अंग बनाकर निकाल दिया जाता है तो मन की व्यथा अपने-आप दूर हो जाती है।

असली कठिनाई उस घटना या अनुभव को, जो सारी तकलीफ का कारण है, याद करने से होती है। ऐसे तमाम मामलों में किसी कुशल मानस-शास्त्रीय या सम्भव हो तो वैद्यक का भी ज्ञान रखने वाले मनोवैज्ञानिक से मदद लेकर उपचार कराना चाहिए। जब भी हम कभी किसी शारीरिक कष्ट से पीड़ित होते हैं तो फौरन किसी वैद्य या डॉक्टर के पास जाते हैं। मानसिक विकारों के प्रति भी हमें ठीक इसी प्रकार के सयाने दृष्टिकोण का सहारा लेना चाहिए। मानस-शास्त्र का ज्ञान और कौशल इतना आगे तक उन्नति कर गया है कि किसी व्यक्ति को मानसिक दृष्टि से लँगड़ा जीवन बिताने की आवश्यकता नहीं। एक कुशल मानस-शास्त्री की सहायता से मानस-विकार से पीड़ित व्यक्ति को जीवन के उस राज-मार्ग पर रखा जा सकता है, जो उसे व्यक्तिगत आनन्दपूर्ण जीवन तथा सामाजिक उपयोगिता की ऊँची मंजिल तक पहुँचा दे।

"मैं उस गायक से एकदम सहमत हूँ जो वीणा के एक ही तार पर विविध राग निकालता हुआ गाता है कि अपनी दुर्बलताओं की सीढ़ी से भी मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।"

—टेनीसन : इन मेमोरियम।